॥ श्रीः ॥

सन्मार्ग प्रचार समिति, केकड़ी के

प्रकाशन

१. पद्मावती पूजा मिथ्यात्व है	(पृ. ३०)	१) रु.
२. शासन देव पूजा रहस्य	(पृ. ५०)	२) रु.
(विद्वद् परिषद् द्वारा १००१) रु. से पुरस्कृत)		
३. जैनधर्म में रात्रि पूजा का निषेध	(पृ. २४)	१) रु.
४. सम्यक् पूजा विधि	(पृ. २०)	७५ पैसे
५. स्त्री प्रक्षाल निषेध	(पृ. ६०)	२) रु.

निम्नांकित प्रकाशन भी उपलब्ध हैं :—

१. जैन निबंध रत्नावली	(पृ. ५००)	७) रु.
२. सामायिक पाठादि संग्रह	(पृ. १२५)	१)५०
३. चूनड़ी (ज्ञान कुंजी)	(पृ. २०)	७५ पैसे

प्राप्ति स्थान:—

मिलापचंद रतनलाल कटारिया

केकड़ी (अजमेर–राजस्थान)

KEKRI (Ajmer) 305 404

श्री मिलापचन्द्र कटारिया जैन ग्रंथमाला

पुष्प नं- ५

स्त्री प्रक्षाल-निषेध

(स्त्री द्वारा जिनप्रतिमाभिषेक करना गलत है)

लेखक :—

श्री रतनलाल कटारिया

केकड़ी (अजमेर)

प्रकाशिका :—

१६ फरवरी ८४ गुरूवार वीर नि. सं. २५१० } सन्मार्ग प्रचार समिति केकड़ी (राजस्थान) (स्थापन सन् १९७०) } मूल्य : दो रुपये मात्र

प्रथम संस्करण: बारह सौ प्रति

मुद्रक : मंगल मुद्रणालय, गंज, अजमेर

स्त्री प्रक्षाल निषेध पर सम्मतियां

★

२८-२९ वर्ष पूर्व पं० शिवजीरामजी, रांची द्वारा इस विषय पर लिखित दो ट्रेक्टों में जो विस्तृत सम्मतियां दी गई थीं स्थानाभाव से यहाँ उन्हें न दे सकने के कारण नीचे उन सम्मति प्रदाता समाजमान्य त्यागियों विद्वानों श्रेष्ठियों के नाम मात्र सादर अंकित किये जाते हैं :—

१.	श्री लादूलालजी हजारीलालजी पाटनी, सभापति दि० जैन पंचायत,	रांची
२.	श्री न्यायाचार्य पू० पं० क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी,	ईशरी
३.	श्रीमान् सुमेरचन्द्रजी वर्णी	,,
४.	श्री. ब्र. सुरेन्द्रनाथजी अधिष्ठाता-उदासीनाश्रम	,,
५.	श्री. पं. शिखरचन्दजी जैन शास्त्री	,,
६.	श्री. ब्र. चम्पालालजी सेठी,	गया
७	श्री. सिंघई भंवरीलालजी सेठी,	सरिया
८.	श्री. गोपीलालजी पाण्ड्या,	कोडरमा
९.	श्री. नंदलालजी जैन,	कलकत्ता
१०.	श्री. हीरालालजी अजमेरा,	,,
११.	श्री. पं. हुकुमचन्द्रजी जैन, अधिष्ठाता दि. जैन गुरुकुल,	हस्तिनापुर
१२.	श्री. दानवीर जैन दिवाकर राज्यभूषण सरसेठ हुकुमचन्द्रजी,	इन्दौर
१३.	श्री. ब्र. प्यारेलालजी भगत, अधिष्ठाता, श्री जैन उदासीनाश्रम	,,
१४.	श्री. पं. बाबूरामजी शास्त्री, स. हु. दि. जैन संस्कृत महाविद्यालय	,,
१५.	श्री. पं. बंशीधरजी जैन न्यायालंकार, प्रधानाध्यापक महाविद्यालय	,,

आमुख

गत वर्ष जनवरी ८३ में केकड़ी में मुनि श्री पार्श्वकीर्ति जी पधारे थे उन्होंने स्त्रियों को अपने उपदेश में कहा कि—"यहाँ की समाज तुम्हें मंदिरजी में जिनाभिषेक नहीं करने देवे तो तुम अपने घर में प्रतिमाजी स्थापन कर प्रातः ४ बजे (रात्रि में) ही चुपचाप प्रक्षाल कर लिया करो।" झूंठी आम्नाय के व्यामोह से ग्रस्त महाराज की पद विरुद्ध और स्त्रियों के लिए विद्रोहात्मक आगम विरुद्ध बातें सुनकर मुझे इनका समुचित समर्थ उत्तर देने का दृढ़ विचार हुआ। बहुत वर्षों से मैं इस विषय में पूरी पकड़ को लिए हुए आज तक के समस्त प्रमाणाभासों का निरसन करने वाला एक ट्रेक्ट लिखना चाहता था। मेरे पूज्य पिताश्री और पं० दीपचन्दजी पांड्या भी इसके लिए प्रयत्नशील थे किन्तु समय टलता गया, अब काल लब्धि आई इसलिए ४-५ दिन में यह ट्रैक्ट तैयार हो गया। मास्टर सा० श्री माणकचन्दजी सोनी ने इसे महाराज को पढ़ कर सुनाया तो वे अनेक नई बातें-युक्तियां प्रमाण सुन कर चकित रह गए उन्होंने कहा कि—"मैं तो समझता था कि हमने समझा सो ही आखरी है किन्तु इनका तो हमारे पास कोई जवाब नहीं है।" महाराज का इतना आशीर्वाद ही मेरे प्रोत्साहन के लिये पर्याप्त था। जो कुछ टूटा फूटा प्रयत्न मैंने किया है वह विद्वानों और समाज के समक्ष है वे इसे और भी सुन्दर समृद्ध बनावें एवं इसका प्रचार करें इसी में, मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा। सबको इसकी १ प्रति अपने पास रखना चाहिये।

कुछ मुनिसंघ स्त्री प्रक्षाल के लिये हठ पकड़ लेते हैं, वहाँ उनके सामने यह पुस्तक रख देनी चाहिये—आफत टल जायेगी।

स्व० पूज्य पिता श्री ने "सन्मार्ग प्रकाशक" रजिस्टर में जो एतद् विषयक उपादान सामग्री संकलित कर रखी थी उसीके माध्यम से यह ट्रेक्ट तैयार किया गया है, अतः उन्हीं की प्रिय वस्तु उनकी पुनीत स्मृति को सादर समर्पित है।

माघ शुक्ला १५ सं० २०४०
दि० १६ फरवरी १९८४

विदुषामनुचरः
रतनलाल कटारिया, केकड़ी

सन्मार्ग प्रचार समिति

उद्देश्य :

१. अविवेक पूर्ण थोथे क्रिया काण्डों, सम्यक्त्व को मलिन नष्ट करने वाले मिथ्यात्व के परिपोषक विधि विधानों, अपार मंहगाई के युग में धर्म के नाम पर किये जाने वाले अपव्ययों का प्रतिरोध ।

२. साधु वेषियों और उनके समर्थक स्वार्थी पण्डितों द्वारा की जाने वाली सिद्धान्त विरुद्ध प्ररूपणा, वीतराग धर्म विमुख पद्धति, समाज को विश्रृंखल करने-वाली कलह विसंवाद-जनक प्रवृत्ति-मिथ्या विचार और शिथिलाचार का विरोध ।

३. गुरुडमवाद से मुक्ति दिलाकर जागृति पैदा करने वाले, जिन शासन की प्रभावना करने वाले, वीतराग मार्ग के पोषक, समीचीन धर्म के उद्‌बोधक, अहिंसा के प्ररूपक कार्यकलापों का सम्यक् प्रचार ।

नियम :

१. वितंडावाद से दूर निर्भीक स्वस्थ विचारक सद् धर्म प्रचारक कोई भी सज्जन इस समिति का सदस्य बन सकता है ।

२. सदस्यता फीस ११) रु० मात्र है ।

३. किसी भी त्यागी और पंडित द्वारा वीतराग मार्ग पर की जाने वाली कैसी भी आपत्ति, शंका-उत्सूत्र प्ररूपणा आदि के निरसन के लिए कभी भी किसी संस्था-समाज और व्यक्ति विशेष को आवश्यकता हो तो समिति से सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं । समिति हर सम्भव सहयोग के लिए सदैव तैयार रहेगी ।

४. कोई भी सज्जन समिति के उद्देश्यों के अन्तर्गत किसी भी विषय का कोई ट्रेक्ट छपवाना चाहें तो समिति छपवा देगी । अर्थ-व्यय उन्हें वहन करना होगा ।

केकड़ी (अजमेर) मिश्रीलाल कटारिया, अध्यक्ष

।। श्री अकलंकाय नमः ।।

स्त्री प्रक्षाल निषेध

(स्त्री द्वारा जिन प्रतिमा का अभिषेक करना गलत है ।)

मंगलाचरण

श्रीमत्परम गंभीर स्याद्वादामोघलांछनम् ।
जीयात् त्रैलोक्य नाथस्य, शासनं जिन शासनम् ।।

इधर उत्तर प्रान्त में जब से श्री शांतिसागरजी महाराज के संघ का विहार हुआ स्त्री द्वारा जिन-प्रतिमाभिषेक की प्रथा का प्रचार हुआ है । किन्तु यह मूलसंघ दि० जैन आम्नाय के विरुद्ध है नीचे इसी पर सम्यक् विचार किया जाता है :—

१. दि० जैन मूल संघ आम्नाय में स्त्री की मुक्ति नहीं मानी है ।

२. सम्यग्दृष्टि जीव किसी भी स्त्री पर्याय में जन्म नहीं लेता क्योंकि शास्त्रकारों ने उसे निंद्य पर्याय माना है ।

३. स्त्री के उत्तम संहनन नहीं होता ।

४. स्त्री के छठा गुणस्थान नहीं होता ।

५. स्त्री १६ वें स्वर्ग से ऊपर नवग्रैवेयकादि में नहीं जाती अर्थात् अहमिन्द्र नहीं होती जब कि अभव्य भी नवग्रैवेयक में चला जाता है ।

६. स्त्री के निःशंक ध्यान नहीं होता ।
(सूत्र पाहुड गाथा २६)

७. स्त्री वस्त्र त्याग कर नग्न दिगम्बरी दीक्षा नहीं धारण कर सकती । उसके सर्वावधि-परमावधि और मनः पर्यय ज्ञान नहीं होता ।

८. स्त्री आर्यिका (उपचरित महाव्रती) होने पर भी खड़ा आहार नहीं ले सकती ।

९. स्त्री द्वादशांग की (चौदह पूर्व की) ज्ञाता नहीं हो सकती ।

१०. स्त्री त्रेसठ शलाका पद धारी (२४ तीर्थंकर १२ चक्रवर्ती ९ नारायण ९ प्रतिनारायण ९ बलदेव) नहीं हो सकती ।

११. स्त्री १४ कुलकर २४ कामदेव ११ रुद्र ९ नारद (पुण्यवंत) भी नहीं हो सकती ।

१२. स्त्री के यज्ञोपवीतादि संस्कार नहीं होते, वह प्रतिष्ठाचार्य नहीं हो सकती ।

१३. स्त्री गणधर नहीं हो सकती, उसके संभिन्न-श्रोतृत्व और चारणादि ऋद्धियां नहीं होतीं ।

१४. स्त्री को मुनिसंघ (भट्टारकादि तक) में भी कोई पट्ट नहीं दिया जाता इसी से किसी भी पट्टावली में स्त्री का नाम नहीं पाया जाता । काल दोष

से आजकल कुछ मुनिसंघों की संचालिका स्त्रियां होने लगी हैं तो उन संघों की दशा और अकीर्ति भी किसी से छिपी नहीं है फिर भी वे पट्टासीन नहीं हो सकती ।

यह स्त्री जाति की कोई निन्दा नहीं है यह तो उसकी सैद्धान्तिक और प्राकृतिक हीन दशा का वर्णन है । लौकिक आदि में भी उसकी हीन स्थिति का दिग्दर्शन इस प्रकार पाया जाता है :—

१५. न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति—स्त्री कभी स्वतंत्र नहीं होती (बाल्यावस्था में वह पिता के संरक्षण में, युवावस्था में पति के और वृद्धावस्था में पुत्रों के संरक्षण में रहती है) परमार्थ के स्वातंत्र्य का अर्थ है वह कभी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकती ।

१६. पुत्री का होना आनन्दकारी नहीं माना जाता इसी से गृहस्थ तीर्थंकरों के पुत्री कभी नहीं होती । ऋषभदेव के जो ब्राह्मी सुन्दरी हुई हैं, शास्त्रों में उसे हुण्डावसर्पिणी काल का दोष माना है । तीर्थंकर किसी के आगे नहीं झुकते, गृहस्थावस्था में मुनि को भी नमस्कार नहीं करते उनका कोई गुरु नहीं होता, वे किसी से दीक्षा नहीं लेते स्वयं बुद्ध होते हैं । पुत्रियों का विवाह करने पर उन्हें झुकना पड़ता अतः ब्राह्मी सुन्दरी ने आजन्म ब्रह्मचर्य धारण कर लिया ।

१७. स्त्री के एक ही पति होता है। विवाह होते ही उसका गोत्र बदल कर पति का गोत्र हो जाता है। सन्तान का अधिकारी भी उसका पति ही होता है वह नहीं, इसी से सन्तान अपने परिचय में वल्दियत ही लिखती है मादरियत नहीं।

१८. स्त्री के पगड़ी नहीं बंधती (पिता के पट्ट पर उसका भाई बैठता है और पति के पट्ट पर ऊसका पुत्र)।

१९. स्त्री बारात में नहीं जाती, श्मशान घाट तक नहीं जाती (सनैती को नहीं उठाती)।

२०. स्त्री की शारीरिक स्थिति भी बड़ी हीन है, वह प्रतिमास चार दिन तक रजस्वला (अशुद्ध) होती है और उसके योनिस्राव तो प्रायः नित्य बना ही रहता है एवं उसके गुह्यांगों में सूक्ष्म लब्ध्यपर्याप्तक जीवों की उत्पत्ति होती रहती है, वह ९ मास तक गर्भ भार वहन करती है। प्रतिदिन शिर स्नान नहीं करती।

नारी की लावण्य से अन्धा होत भुजंग।
वे नर कैसे ऊबरें जो नित नारी के संग॥

२१. स्त्री परपुरुष को नहीं छू सकती, इसी से मुनि को वंदना भी उसे ५–७ हाथ दूर से करना बताया है (इसी के आधार पर यही नियम स्त्री के लिए चैत्य

वंदना में समझना चाहिए) यही भारतीय शालीनता और सदाचार है। (देखो मूलाचार गाथा १९५ आदि)*

इन्हीं सब कारणों से स्त्री, जिन प्रतिमा को छूने की अधिकारिणी नहीं है। पुरुष की और उसकी सीमायें ही अलग-अलग हैं। पुरुष से उसका लिंग (वेद ZENDER) ही बिल्कुल जुदा है। अतः समानाधिकार के नाम पर उसकी उपर्युक्त हीनताओं या भिन्नताओं का अपलाप नहीं किया जा सकता। पुरुष के साथ उसके समानाधिकार की बातें करना व्यर्थ और अविवेकपूर्ण है। वैसे सब प्राणी धर्म-पालन के अधिकारी हैं। सबको अपनी अपनी सीमा में रह कर ही अपने योग्य धर्म साधन करना चाहिये इसी में सबका भला है। अपनी सीमा से बाहर निकल कर इधर उधर गड़बड़ करने से अनेक संकट विसंवाद उत्पन्न होते हैं जैसे लक्ष्मण-रेखा से बाहर निकलने पर सीताजी का हरण हुआ और राम रावण का महायुद्ध हुआ।

---

*इसी दृष्टि से स्त्री के क्षायिक सम्यक्त्व और तीर्थंकर प्रकृति का बंध होना भी नहीं माना है क्योंकि ये दोनों बातें केवली या श्रुत केवली के पाद मूल में ही होती हैं। औ रस्त्री केवली श्रुत केवली के सानिध्य में रह नहीं सकती है क्योंकि उसे उनकी वंदना भी ७ हाथ दूर से ही करना बताया है।

पुरुषों में भी असच्छूद्र तो जिनप्रतिमा के अभिषेक और अष्ट द्रव्य पूजन के योग्य ही नहीं माने गये हैं। सच्छूद्र अष्ट द्रव्यपूजन कर सकते हैं किन्तु अभिषेक वे भी नहीं कर सकते क्योंकि वे प्रतिमा को नहीं छू सकते इसी से उनके यज्ञोपवीत भी नहीं होती वे मुनि-दीक्षा के (मुक्ति के) पात्र भी नहीं माने गये। यही हालत इस विषय में स्त्रियों की है। स्त्रियाँ जिस प्रकार मुनि को आहार दे सकती हैं, शास्त्र छू सकती हैं, सच्छूद्र भी यह सब कर सकता है किन्तु प्रतिमा को दोनों ही नहीं छू सकते।

सोमदेव सूरि ने यशस्तिलक चम्पू में लिखा है—"दीक्षा योग्यास्त्रयो वर्णाश्चत्वारश्च विधोचिताः" अर्थात्—मुनिदीक्षा के योग्य तीन वर्ण ही हैं और मुनि को आहारदान के योग्य चारों वर्ण हैं। यही बात पं० आशाधरजी ने अनगार धर्मामृत में लिखी है। इससे सिद्ध है कि—सब की अनेक विषयों में भिन्न-भिन्न योग्यताएं एवं अधिकार सीमायें उपादानादि शक्ति के अनुसार कायम की गई हैं। यह कोई अनुदारता

निन्दा या द्वेष वश नहीं है यह तो सारा चित्रण सैद्धान्तिक वस्तु-तत्वानुसार है।卐

प्रश्न—जब स्त्री शास्त्र पढ़ सकती है, मुनि को आहार दान कर सकती है तो वह जिनाभिषेक क्यों नहीं कर सकती ?

समाधान—प्रतिमा में और शास्त्र-मुनि में बड़ा अन्तर है। शास्त्र को तो बिना न्हाये, बिना धोती दुपट्टा पहिने-कपड़े बदले भी छू लेते हैं जब कि प्रतिमा के लिये तो ऐसा कहीं नहीं है। पगचम्पी करने वाला बिना स्नान किये, बिना धोती दुपट्टा पहिने मुनि को छूता है। दूसरी बात, मुनि का शरीर औदारिक होता है जिसके नवद्वार से सदैव मल निकलता रहता है उसके साथ प्रतिमा की समानता कैसे हो सकती है ? प्रतिमा की तो मन्त्रादिक से प्रतिष्ठा होती है और उसे साक्षात् भगवान् अर्हन्त के स्थान पर मान-

---

卐 फिर भी स्त्री जाति की जो अपनी महत्ता और विशेषता है वह अपनी जगह बर करार है उसे इससे कोई आंच नहीं आती यह अपनी जगह है वह अपनी जगह है एक वस्तु के अनेक रूप होते हैं। स्त्री में मातृत्व, वात्सल्य, दोनों कुलों की शोभा, गृहणीत्व आदि ऐसे ही गुण हैं। गृहिणीं गृहमित्याहुः न कुड्यकट संहतिम्॥ चूने पत्थर के बने मकान को घर नहीं कहते हैं, घर वाली ही वस्तुतः घर है। वही वह धन है जिसके पीछे मनुष्य "धणी" कहलाता है।

कर उसकी उपासना की जाती है इसी से उसकी पूज्यता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि स्वयं मुनि भी प्रतिमा की वंदना करते हैं इससे यही फलितार्थ निकलता है कि—स्त्री भले ही मुनि को आहार दान करले परन्तु जिनाभिषेक वह नहीं कर सकती जैसे वह आहारदान कर सकती है वैसे ही सिर्फ जिन-पूजन कर सकती है, अभिषेक नहीं।

मूलाचारादि शास्त्रों में स्त्री को मुनि की वंदना ५-७ हाथ दूर से करना बताया है ऐसा नियम पुरुषों के लिए नहीं है इससे स्पष्ट है कि स्त्री को चैत्य (प्रतिमा) की वंदना (पूजादि) भी दूर से ही करना चाहिए अर्थात् प्रतिमा को कभी नहीं छूना चाहिए न अभिषेक करना चाहिये। वृद्ध परम्परा से भी यहीं प्रचलित है। जो समीचीन है।

अगर नासमझी और किसी पक्षान्धता से स्त्री को अभिषेक की छूट दी गई तो फिर सच्छूद्र को भी इसकी छूट देनी होगी क्योंकि इस विषय में दोनों की स्थिति समान है एक गलती करने पर दूसरी गलती भी साथ ही करनी पड़ेगी। इसीलिए स्त्री द्वारा अभिषेक किये जाने की प्रथा पहिले कहीं नहीं थी अब कुछ वर्षों से कतिपय मुनिसंघों की अदूर-दर्शिता के कारण यह कहीं कहीं चालू हुई है।

मूलसंघ के मान्य आचार्यों के शास्त्रों से इसका कोई समर्थन नहीं होता प्रत्युतः निषेध परिलक्षित होता है, देखिये—

१. तिलोयपण्णत्ती आदि में लिखा है—इन्द्र ने भगवान् पर चमर ढोरने के लिये चौसठ यक्षों को नियुक्त किया किन्तु यक्षिणी आदि किसी स्त्री जाति को नियुक्त नहीं किया इसी शालीन पद्धति का अनुकरण जिन प्रतिमा के साथ मनुष्य भी करते हैं, आज भी सब जगह यही प्रथा है कि जिन प्रतिमा पर त्रिवर्ण के मनुष्य ही चमर ढोरते हैं कोई स्त्री कभी नहीं ढोरती। अगर स्त्री जिनाभिषेक की अधिकारिणी होती तो उसके द्वारा चमर ढोरने की पद्धति का भी प्रचार पाया जाता किन्तु कहीं पर भी ऐसा नहीं। अतः जिन मुनिसंघों ने स्त्रियों द्वारा जिनभिषेक की प्रथा प्रारम्भ की है और उसके प्रचार के लिए जिन-मूर्ति को शालिग्राम जी की तरह साथ रखते हैं वे बहुत बड़ी गलती कर रहे हैं।卐

卐वे मुनि संघ भी स्त्रियों द्वारा जिन प्रतिमादि पर चवंर नहीं ढुरवाते हैं जिन करणों से वे स्त्रियों से चवंर नहीं ढुरवाते हैं वे ही कारण तो स्त्रियों द्वारा जिन-प्रतिमा का अभिषेक नहीं होने में है। उन्हें इस पर ही ध्यान देना चाहिये स्वतः ही वे सही पर आजायेंगे। जब स्त्रियों द्वारा चंवर ढोरना तक अवैध माना है तब उनके द्वारा अभिषेक तो स्वतः ही निषिद्ध ठहरता है। यही प्राचीन और शालीन पद्धति है। इसी पर चलना कल्याणकारी है।

२. जिनसेनाचार्य के आदि पुराण में लिखा है कि--भगवान् का राज्याभिषेक, दीक्षाभिषेक और तपः कल्याणक के वक्त पालकी का उठाना इन तीनों क्रियाओं में राजाओं और इन्द्रादि देवों ने ही भाग लिया था किसी रानी, इन्द्राणी, देवी आदि स्त्री जाति ने भाग नहीं लिया था।

३. तिलोयपण्णत्ती (यती वृषभाचार्य कृत) अधिकार ३ गाथा २१८ से २२३ तथा अधिकार ८ गाथा ५७९ से ५८४ में बताया है कि स्वर्ग में देव पैदा होने के बाद वे वहाँ के जिन भवनों में जाकर क्षीर-सागर के जल से जिन प्रतिमाओं का अभिषेक करते हैं।

इसी तरह तिलोयपण्णत्ती अधिकार ५ (पृष्ठ ५४२) तथा जंबूदीप पण्णत्ती (पृष्ठ ९८) में बताया है कि नन्दीश्वर द्वीपस्थ जिन-प्रतिमाओं का देवगण निर्मल जल से अभिषेक करते हैं।

इन सब में कहीं पर भी देवियों इन्द्राणियों द्वारा जिन प्रतिमा का अभिषेक नहीं बताया है, क्योंकि यह पद्धति ही नहीं है।

४. गर्भजन्मकल्याणक में भगवान् अवयस्क (बालक) रहते हैं अतः उन कल्याणकों में देवियों

इन्द्राणियों का यथायोग्य भाग लेना शास्त्रों में बताया है किन्तु तप-ज्ञान-मोक्ष इन तीनों कल्याणकों में भगवान् के वयस्क एवं संयमी होने से देवियां इन्द्राणियाँ कोई भाग नहीं लेतीं सब कार्य (नियोग) देव और इन्द्र ही करते हैं ऐसा शास्त्रों में बताया हैं। जिन प्रतिमा बाल्यावस्था की नहीं है क्योंकि यह अवस्था असंयम रूप है और पूज्यता संयम से आती है अतः प्रतिमा अरिहंतावस्था की योगिमुद्रा में बनाई जाती है। १८ हजार शील के भेदों को धारण करने वाले जिनेन्द्र की प्रतिमा को इसी से किसी स्त्री द्वारा छूना योग्य नहीं बताया गया है।★

★गर्भ जन्म कल्याणक में जिनमाता के सभी कार्य (सेवा) सिर्फ देवियां ही करती हैं देव कभी नहीं यह भी स्त्री पुरुषों की अपनी अपनी सदाचार की मर्यादानुसार है। दोनों की मर्यादायें परस्पर भिन्न हैं। स्त्री की सेवा, संगति, स्पर्श स्त्री ही और पुरुष की पुरुष ही कर सकते हैं। शालीनता और सदाचार का नियम भारतीयतानुसार शास्त्रकारों ने यही रखा है। इनका लोप करना धर्म विरुद्धता ही नहीं भारतीयता से भी दूर जाना है। स्त्रियों के द्वारा मुनि क्षुल्लकादि के एवं पुरुषों के द्वारा आर्यिका क्षुल्लिकादि के चरण छूना, इसी तरह मुनि द्वारा स्त्रियों को दीक्षा देना तथा आर्यिका द्वारा पुरुषों को दीक्षा देना, एवं मुनि संघों में ब्रह्मचारिणी-आर्यिकादि का रहना भी ठीक नहीं है, यह सब गलत पद्धतियां हैं शील के दोष हैं। इन से लोकापवाद भी होता है।

स्त्रियाँ सिर्फ जिन पूजा कर सकती हैं, प्रतिमा को नहीं छू सकती यही स्थिति सच्छूद्रों की है। इनके द्वारा प्रतिमा को छूने से कोई विशेषता पैदा होती हो या इससे इन्हें मुक्ति मिलती हो तो कोई बात है किन्तु ऐसा तो है नहीं, क्योंकि इन दोनों पर्यायों से मुक्ति की तो योग्यता ही नहीं बताई गई है अतः इससे इन्हें कोई बुरा मानने की जरूरत नहीं है उल्टा इन्हें तो यह मानकर सन्तोष करना चाहिये कि--चलो हमारी तो जिम्मेवारी ही कम हुई। त्रिवर्ण के पुरुष वैसे ही धर्मकार्यों से दूर रहते हैं उनका यह अधिकार भी छीन लिया जायेगा तो वे पूजा भक्ति ही छोड़ बैठेंगे कि—इन्होंने सब संभाल ही लिया है अब हमारी क्या जरूरत ? अतः सब को अपने अधिकार जितनी ही बात करनी चाहिए, दूसरे की सीमा में प्रवेश करने की ज्यादती नहीं करना चाहिये यही श्रेयस्कर है।

पं. मक्खनलालजी शास्त्री ने "आगम मार्ग प्रकाशक" नाम की अपनी पुस्तक में पृ० १५६ से १७३ तक इस विषय को चर्चित किया है। इससे पूर्व इनके पक्ष के ब्र. सूरजमलजी तथा मनोहरलाल जी शाह शास्त्री ने भी अपनी पुस्तकों में स्त्री द्वारा जिनाभिषेक का समर्थन किया है। इन सब की

मूलबातों का ऊपर सम्पूर्ण जवाब दे दिया गया है। इन लोगों ने आम जनता को भ्रमित करने के लिए शास्त्रों के मनगढ़न्त अर्थ करके असत्य प्रमाण देने का भी प्रयत्न किया है। नीचे उस पर समीक्षा पूर्वक प्रकाश डाला जाता है ताकि लोग भ्रमित न हों और वास्तविकता को पहचानें—

१—"आगम मार्ग प्रकाशक" पृष्ठ १६४ पर लिखा है—"सुगन्धदशमी कथा" जो भारतीय ज्ञान पीठ से प्रकाशित है वह ग्रन्थ प्राकृत संस्कृत भाषाओं में डेढ हजार वर्ष पहिले महान् आचार्य श्रुतसागर आदि पूर्वाचार्यों ने रचा है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में लिखा है कि–राजाश्रेणिक ने गौतम गणधर से पूंछा और गणधर देव ने सुगन्धदशमी व्रत की कथा बतलाई, इससे सिद्ध है कि–पुरातन काल में पूर्वाचार्यों ने तथा गणधर देव ने स्त्रियों द्वारा अभिषेक का विधान किया है। देखो–

चतुर्विंशति तीर्थेशां स्नपनं प्रप्रणीयते ।। ६१ ।।
पूर्णेऽथदशमे वर्षे तदुद्यापन माचरेत् ।
शांतिकं वाऽभिषेकं वा महान्तं
विधिवत्सृजेत् ।। ६६ ।।

इन श्लोकों की हिन्दी टीका इस प्रकार छपी है– चौबीसों भगवान् का अभिषेक करना चाहिए। दशवें

वर्ष में उद्यापन करना चाहिए उसमें शांति विधान भगवान् का महान् अभिषेक करना चाहिये ।,,

समीक्षा

ज्ञानपीठ से प्रकाशित 'सुगन्ध दशमी कथा' में कोई भी रचना प्राकृत की नहीं है सर्वप्रथम जो रचना दी है वह अपभ्रंश भाषा की है वह भी १३ वीं विक्रम शती की गृहस्थ विद्वान् की है दूसरी रचना संस्कृत की दी है, वह ब्रह्म श्रुतसागर वर्णीकृत १६ वीं शती की है ऐसा इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में स्पष्ट बताया है फिर भी मक्खनलालजी ने ग्रन्थ को बिना ही प्रमाण के डेढ हजार वर्ष पुराना लिख दिया है । इन्होंने श्रुत सागरजी को महान् आचार्य लिखा है किन्तु कथा के अन्त में "वर्णिना श्रुतसागरेण विरचिता" ऐसा स्पष्ट लिखा है, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि ग्रन्थकार श्रुतसागर ब्रह्मचारी श्रावक थे निर्ग्रन्थ आचार्य नहीं । उनकी इस १५३० विक्रम सं० की रचना को जो ५०० वर्ष पुरानी है मक्खनलालजी ने डेढ हजार वर्ष पुरानी लिख दिया है इस तरह तो अभी वीर नि. सं. २४९९ में प्रकाशित उनकी कृति 'आगममार्ग प्रकाशक' भी अढाई हजार वर्ष पुरानी हो जायेगी किन्तु इस तरह उल्टी गणित चलाने से नहीं चल सकती ।

प्रथमानुयोग के सभी ग्रन्थ प्रायः श्रेणिक के प्रश्न और गणधर देव के उत्तर रुप में ही प्रारम्भ किये गए हैं यह एक शैली है इससे ये ग्रन्थ गणधर-कृत नहीं हो जाते । अगर ऐसा ही माना जायेगा तो मूल संघ से भिन्न यापनीय काष्ठादि दि० जैनाभास संघों के ग्रन्थ तथा श्वे० ग्रन्थ भी गणधरकृत हो जायेंगे । अगर ये और अन्य ग्रन्थ गणधरकृत होते तो इनमें परस्पर विरुद्ध और विभिन्न कथन नहीं पाये जाते और न इनके कर्त्ताओं के नाम एवं समय ही भिन्न-भिन्न होते । भोले भक्तों को बहकाने के लिए छद्मस्थ भट्टारक-ब्रह्मचारी-श्रुतसागरजी की आधुनिक रचना को डेढ हजार वर्ष पुरानी और गणधर कृत लिख दिया है । इसमें भी एक विसंगति है—गणधर तो ढाई हजार वर्ष पूर्व हुए हैं फिर ये डेढ हजार वर्ष में कौन-से गणधर आ गये और इस प्राचीन समय में तो कोई वर्णी श्रुतसागर भी इतिहास में नहीं हुए हैं । गणधर की तो भाषा प्राकृत थी फिर यह संस्कृत की कृति उनकी कैसे हो गई ?

पं. मक्खनलालजी ने —"चौबीसों भगवान् का अभिषेक करना चाहिये" इस अर्थ को सुगन्ध दशमी कथा में छपा हुआ बताया है किन्तु जब हमने ग्रन्थ देखा तो (उसके पृष्ठ ३८ पर) अभिषेक कराना चाहिये

ऐसा छपा है । अगर मक्खनलालजी "अभिषेक कराना" लिख देते तो उनका यह प्रमाण ही बेकार हो जाता । फिर भी जो कुछ लिखा है उससे भी उनके मन्तव्य की कोई सिद्धि नहीं होती क्योंकि ग्रन्थ में यह कथा राजा को सुनाई गई थी अतः पुरुष की मुख्यता के कथन से अभिषेक का विधान भी पुरुषों के लिए ही सिद्ध होता है । इस कथा को उस वक्त राजा के साथ के एक विद्याधर ने भी सुना, सबने ही सुगन्धदशमी व्रत किया देखो श्लोक ५७ तथा १४६ एवं ८४ ।

'सिर्फ स्त्रियाँ ही इसे कर सकती हैं' ऐसा तो ग्रन्थकार ने कहीं नहीं लिखा है । श्लोक ७३ में लिखा है कि—"नरो वा वनिता वापिव्रतमेतत्समाचरेत्" अर्थात्-नर और नारी दोनों इस व्रत का समाचरण कर सकते हैं । इसमें आचरण के पहले जो सम उपसर्ग लगाई है वह इस बात का द्योतक है कि अपनी सीमा (अधिकार) अनुसार--यथायोग्य व्रत क्रिया करें अर्थात सच्छूद्र और स्त्री स्वयं अभिषेक नहीं करें, चाहें तो अन्य (त्रिवर्ण के पुरुषों) से करवालें ।

अन्यत्र भी व्रतकथाओं में स्त्रियों को लक्ष्य कर व्रत विधि में कहीं जिनाभिषेक लिखा हो तो उसका अर्थ उपर्युक्त रीति से ही ग्रहण करना चाहिये ।

ग्रन्थकार ने श्लोक ६६ में लिखा है कि उद्यापन में शांति-विधान या महाभिषेक या अन्य महाविधि करना चाहिये । इसमें या शब्द देकर अभिषेक को विकल्प रूप में रखा है इसमें स्त्रियों द्वारा जिनाभिषेक का निषेध भी सिद्ध होता है । यही अर्थ सुगंध दशमी कथा के पृ. ३८ पर छपा है किन्तु मक्खनलालजी को यह अर्थ और मूल कथन अपने मन्तव्य के विरुद्ध लक्षित हुआ अतः उन्होंने अर्थ में वा शब्द ही नहीं दिया उसे हटा दिया । श्लोक ६६ में विधिवत् वाक्य भी दिया हुआ है इससे भी यथायोग्य व्रत क्रिया करना ही फलित होता है ।

ग्रंथकार ने कहीं भी स्त्रियों द्वारा जिनाभिषेक का विधान नहीं किया है फिर भी मिथ्या रूप से मक्खनलालजी ने लिख दिया है कि गणधर देव ने स्त्रियों द्वारा अभिषेक का विधान किया है ।

ऐसी हालत में पं. मक्खनलालजी के इस "आगम मार्ग प्रकाशक" ग्रंथ को 'अनागम मार्ग प्रकाशक' कहा जाये या कुछ और ? यह विज्ञ पाठक सोचें ।

आजकल कुछ मुनिसंघ इस ग्रंथ को (चर्चा-सागर की तरह व्यामोह वश) अपना मूल आगम मानते हैं किन्तु इस ग्रन्थ में इसी प्रकार की और भी सैकड़ों

विविध गलतियां पाई जाती हैं। समय मिला तो उन पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

२.—ब्र० सूरजमलजी द्वारा रचित 'स्त्री द्वारा जिनाभिषेकादि पर समाधान' पुस्तक के पृ० १६७ पर लिखा है—

"आचार्य पुष्पदंत महाकविकृत अपभ्रंश महापुराण में इस प्रकार वर्णन है—

आणिउ विणीयपुरी सरी धारि,
सकलत्तु सभाउदुहाव हारि।
अहिसिंचइ जिण पडिमउ घएहिं,
दहियहि दुद्धइ धारा पयेहिं।
(द्वितीय खण्ड पृष्ठ ३९५)

अर्थ—विनीत पुरुषों को अपनी स्त्रियों सहित कलशों में भर-भर कर और अपने मस्तकों से उठाकर समस्त दुःखों की नाशक जिन प्रतिमाओं पर घृत दही दूध और जल की धाराओं से अभिषेक करना चाहिये। इस प्रमाण से स्त्रियों द्वारा भगवान् का पंचामृत अभिषेक निर्विवाद सिद्ध है। पुष्पदंत आचार्य महावीर स्वामी के मोक्ष जाने के बाद उनकी वाणी को लिपिबद्ध करने वाले सबसे पहिले आचार्य हैं। श्रुत पंचमी इसीलिए प्रसिद्ध है कि—इसी दिन

श्री पुष्पदंत भूतबलि आचार्यों ने शास्त्र लिखने की प्रणाली चालू की थी"।

समीक्षा

ऊपर ब्रह्मचारी जी ने जो हिन्दी अर्थ किया है वह बिल्कुल गलत है उससे आगे पीछे का संदर्भ ही समाप्त हो गया है। सही अर्थ इस प्रकार है—

सीर (हल) धारि (धारण करने वाले--बलदेव रामचन्द्र जी) सकलत्तु (कलत्र-पत्नी सीता सहित) सभाउ(भ्राता लक्ष्मण सहित) विणीयपुरी (विनीता-अयोध्यापुरी को) आणउ (आये)।

इससे जाना जा सकता है कि -ब्रह्मचारी जी को अपभ्रंश भाषा का कतई कोई ज्ञान नहीं है। स्त्री द्वारा जिनाभिषेक के विषय में कोई ठीक प्रमाण न मिलने के कारण इन्होंने मनगढन्त अर्थ करके चाहे जिसको प्रमाण बनाने की कोशिश की है। इन्होंने अपभ्रंश महापुराणकार पुष्पदंत को जो गृहस्थ विद्वान हैं और १२वीं शती के हैं झूंठ मूंठ ही षट्खंडागमकार प्राचीन पुष्पदंत भूतबलि आचार्य लिख दिया है।

भारतीय ज्ञानपीठ से हिन्दी अर्थ और ऐतिहासिक प्रस्तावना युक्त इस अपभ्रंश महापुराण को कोई भी पढ़कर हमारी उपरोक्त बातों का निर्णय

कर सकता हैं। षट्खण्डागम प्राकृत भाषा में सूत्र रूप रचना हैं उस समय अपभ्रंश भाषा पैदा ही नहीं हुई थी अतः अपभ्रंश महापुराण के कर्त्ता कदापि पुष्पदन्त भूतबलि नहीं हो सकते यह तो मोटे रूप से कोई भी सोच सकता है।

यह महापुराण प्रायः जिनसेन गुणभद्र के संस्कृत महापुराणानुसार बना है उसमें भी इस प्रसंग में वही वर्णन किया है जो हमने हिन्दी अर्थ में दिया है।

यहाँ की तरह वहाँ भी स्त्री (सीता) द्वारा अभि-षेक का कोई भी कथन नहीं है। अपभ्रंश महा-पुराण में श्रीराम द्वारा जो पंचामृताभिषेक बताया है वह कथन प्राचीन मान्य संस्कृत के महापुराण में कतई नहीं है यह कथन गृहस्थ ग्रन्थकार का मूल-संघ आम्नाय से विपरीत है अतः प्राचीन मान्य मूल संघीय आचार्यों के सामने वह कोई बकत नहीं रखता।

३. पं मनोहर लालजी शास्त्री ने--"स्त्री अभिषे-कादि पर शास्त्रीय प्रमाण" नाम की अपनी पुस्तक में पृष्ठ ३८,३९ पर लिखा है :--"कुन्द कुन्दाचार्य कृत षट्पाहुड संस्कृत टीका पेज ३३४

"यावज्ज्येष्ठा जिन प्रतिमां गृहीत्वा गच्छति तावत्तत्र न कोऽपि दृष्टः ज्येष्ठातु लज्जिता अहं बृहद् भगिन्या वंचिता' इति वैराग्येण आर्यिकायाःपाद मूले दीक्षां जग्राह।

अर्थ-ज्योंही ज्येष्ठा जिन-प्रतिमा को लेकर वहाँ जाती है तो उसे वहाँ कोई नहीं दिखाई देता वह मन में लज्जित होकर कि 'मैं अपनी बहिन चेलना द्वारा ठगी गई हूं ऐसा सोचकर आर्यिका से दीक्षा धारण करली।

समीक्षा

यहाँ संस्कृत टीकाकार श्रुतसागर जी का नाम छिपाकर कुन्दकुन्दाचार्य का नाम दिया है।इसी तरह उद्धारण भी अधूरा दिया है। इसके पूर्व में लिखा है कि-"तत्र चेलनया ज्येष्ठा आभरणादिमिषेण व्याघोटिता स्वयं श्रेणिक मागता"। अर्थात्-वहाँ चेलनाने ज्येष्ठा को गहने लाने के बहाने वापिस लौटा दियाऔर खुद श्रेणिक के पास पहुंच गई। इस कथन से स्पष्ट सिद्ध है कि ज्येष्ठा गहने लेने को भेजी गई थी जिन-प्रतिमा लाने को नहीं। जिन-प्रतिमा कातो यहाँ कोई प्रसंग ही नहीं है। जिन-प्रतिमा लाने की बात मानेंगे तो कथन में परस्पर विरोध आयेंगा। यही कथा उत्तर पुराण (पर्व ७५) हरिषेण कथा

कोश, आराधना कथा कोश, पुण्याश्रव कथा कोश, श्रेणिक चरित्र आदि ग्रन्थों में पाई जाती है सब में आभरण लाने की ही बात है, कहीं भी जिन प्रतिमा लाने की बात ही नहीं है। लिपिकारों की असावधानी से टीका में गलत लेखन हो गया है--प्राचीन प्रतियों से इसे सुधारा तो नहीं उल्टा इसे प्रमाण में दिया गया है इससे मूल ग्रन्थकार का अवर्णवाद होता है। इसी प्रकार गलत परम्परायें पड़ती हैं और विसंवाद उत्पन्न होते हैं अतः जैसे अनाज को बीनकर शोधकर काम में लाते हैं उसी तरह कहीं असंगति दीखे तो शास्त्रों को भी जांच कर परस्पर मिलान कर स्वाध्याय करना चाहिये तभी हम सही लाभ उठा सकते हैं।

'इति वैराग्येण' का अर्थ—'ऐसा सोचकर' किया है वह गलत है। इसकी जगह 'इस प्रकार विरक्त होकर' करना चाहिये। इसी तरह हिन्दी में "वह ···दीक्षा धारण करली" इसकी जगह "उसने ···दीक्षा धारण करली" इस प्रकार शुद्ध होना चाहिए।

पं. मनोहर लालजी की पुस्तक के अनुसार ही शेष प्रमाण ब्र० सूरजमल जी और पं. मक्खन लाल जी ने अपनी पुस्तकों में दिये हैं। इन सब के माकूल

जवाब पं. शिवजीरामजी जैन पाठक, रांची वालों ने "स्त्री प्रक्षाल निषेध" और "स्त्री प्रक्षाल आदि की अविधेयता" इन दो पुस्तकों के द्वारा दे दिये हैं। जिनका कोई प्रत्युत्तर आज तक इन लोगों से नहीं लगा है फिर भी मैं"पाठक" जी के सत्प्रयास को और भी पल्लवित कर नये रूप में पं. मनोहर लालजी की पुस्तक के शेष प्रमाणों का नीचे समीक्षात्मक उत्तर प्रस्तुत कर रहा हूं ताकि इस विषय में रुचि रखने वाले अपनी ज्ञान वृद्धि करते हुए समुचित लाभ उठा सकें तथा ऐसे ही कोई और प्रमाणाभास सामने आयें तो इस लेख के आधार पर उनका निरसन कर सकें।

४—चन्द्रप्रभ चरित्र (वीरनंदि आचार्यकृत) सर्ग ३

तस्मिन् विधाय महतीमुपवास पूर्वां,
पूजां जगद्विजयिनो जिन पुंगवस्य।
स्नानं समीहित निमित्त मथस्तदीय,
बिम्बस्य स प्रविदधे सहितोऽग्रदेव्या ॥६१॥

अर्थ—उस पर्व के दिन राजा ने व्रत धारण पूर्वक जगद्विजयी जिनेन्द्र की भारी पूजा की और फिर कामना पूर्ण होने की अभिलाषा से रानी सहित जिन बिम्ब का अभिषेक किया।

समीक्षा

हिन्दी अर्थ में जो पूजा के बाद अभिषेक किया बताया है वह स्वयं इन लोगों की मान्यता के विरुद्ध है, अभिषेक पूजा के पूर्व होता है और यहाँ इन्होंने पूजा के बाद बताया है। मूल में कहीं भी 'अभिषेक' शब्द नहीं है मूल में तो 'स्नान' शब्द है जिसे सकाम बताया है जबकि जिन-सेवा निष्काम होती है। अत : यहाँ सही बात कुछ और ही है, यही कथन गुणभद्राचार्य-कृत उत्तर पुराण पर्व ५४ में इस प्रकार है : —

कृत्वा महाभिषेकं च जिन संगम मंगलै : ॥ ४९ ॥
गंधोदकै स्वयं देव्या सहैवास्नात्स्तुवन्जिनान्।
व्यधादाष्टांहिकी पूजामैहिकामुत्रिकोदयां ॥ ५० ॥

(अर्थ :-राजा ने महाभिषेक करके जिनेन्द्र के संगम से मंगल रूप हुए गंधोदक से स्वयं रानी के साथ जिन स्तुति पूर्वक स्नान किया और फिर आष्टांहिकी पूजा की) इससे स्पष्ट है कि-वीरनंदि के चन्द्रप्रभ चरित में भी गंधोदक से राजा रानी का स्नान करना बताया है। 'स्नान' शब्द से जिनाभिषेक नहीं बताया है जिनाभिषेक तो पूजा शब्द में ही गर्भित कर दिया है। वीरनंदि ने चन्द्रप्रभ-चरित में बहुतसा कथन उत्तर पुराण के अनुसार ही किया है अत: यह कथन भी

उत्तर पुराणानुसार ही है। यहाँ भी अभिषेक सिर्फ राजा ने ही किया है रानी तो वेदी से नीचे खड़ी रहकर दर्शिका बनी है। अकेला राजा तो गंधोदक वेदी पर ही लगा सकता था किन्तु रानी वेदी पर नहीं आ सकती थी (क्योंकि स्त्रियों को वंदना ७ हाथ दूर से करना बताया है) अत : राजा ने नीचे आकर रानी के साथ गंधोदक से स्नान किया अर्थात् दोनों ने अपने-अपने उत्तमांग (शिर) पर गंधोदक लगाया।

यहाँ राजा के द्वारा नीचे आने की दृष्टि से आचार्य श्री ने "अधस्" पाठ दिया है। प्राचीन सभी प्रतियों में यही पाठ पाया जाता है और यही सुसंगत है किन्तु उसकी जगह जो 'अथस्' पाठ बदला है वह नितांत गलत है क्योंकि—

संस्कृत में 'अथस्' कोई शब्द ही नहीं है शुद्ध शब्द तो 'अथ' है। अगर वह रखते हैं तो छंदोभंग होता है इसके सिवा वह असंगत और व्यर्थ भी है। किसी आधुनिक संस्कृत टीकाकार ने यहाँ 'अतस्' पाठ माना है और उसका 'पश्चात्' अर्थ किया है लेकिन वह भी व्यर्थ एवं गलत है। 'ध' का 'थ' तो लिपिकारों की असावधानी से संभव है क्योंकि 'ध'

और 'थ' वर्ण का आकार तो समान सा है किन्तु 'ध' का 'त' होने में काफी असमानता है★ अतः इस प्रमाण से भी स्त्री द्वारा कतई जिनाभिषेक सिद्ध नहीं होता (जिनाभिषेक तो क्या वेदी पर चढ़ना ही सिद्ध नहीं होता) सिर्फ पुरुष द्वारा ही जिनाभिषेक सिद्ध होता है।

५—जिनदत्त चरित्र (उत्तर पुराणकार गुणभद्राचार्य कृत) सर्ग १—

गृहीत गंध पुष्पादि प्रार्चना सपरिच्छदा,
अथैकदा जगामैषा प्रातरेव जिनालयं ॥५५॥
त्रिः परीत्य ततः स्तुत्वा जिनांश्च चतुराशया,
संस्नाप्य पूजयित्वा च प्रयाता यति संसदि ॥५६॥

अर्थ—एक दिन सेठानी जीवंयशा दास दासियों के साथ जिनालय में जिनदर्शन के लिये गई, वहाँ उसने जिनेन्द्र का अभिषेक और पूजा की।

समीक्षा—

इसमें 'सपरिच्छदा' का अर्थ 'दास दासियों के साथ' किया है वह गलत है। कोशों में 'परिच्छद' का अर्थ 'परिवार' किया है वही यहाँ सुसंगत है। इससे यह सिद्ध होता है कि—सेठानी जिनमंदिर परिवार के साथ गई थी। अभिषेक परिवार के मनुष्यों ने ही किया था (और पूजा सभी ने की थी) कथा की नायिका सेठानी होने से उसकी मुख्यता से कथन किया है फिर भी सपरिवार अभिषेक पूजा करना बताया है यह समुच्चय कथन है अतः आम्नायानुसार यथायोग्य अर्थ करना चाहिये। (अकेली सेठानी द्वारा अभिषेक पूजा करना नही बताया है)।

'परिच्छद' शब्द का अर्थ 'दास दासी' करना मनगढन्त है यह शायद इसलिए किया गया है कि—दासदासी शूद्र होने से उनके द्वारा अभिषेक होता नहीं अतः सिर्फ सेठानी के द्वारा अभिषेक सिद्ध हो जायेगा। इसके सिवा मूल में 'जिनदर्शन' शब्द न होते हुये भी दास दासियों की दृष्टि से उसे बढ़ाया है किन्तु इस प्रकार की चतुराई से स्त्रियों के द्वारा अभिषेक की कोई सिद्धि कदापि नहीं हो सकती। ग्रंथकार ने तो स्पष्ट रूप से सपरिच्छदा (सपरिवारा) सेठानी का विशेषण दिया है अतः कोई होशियारी यहाँ चलने की नहीं।

जिनदत्त चरित्र को उत्तर पुराणकार गुणभद्राचार्य का बताया है किन्तु यह इतिहास से आज तक

★'चन्द्र प्रभ चरित' पर गुणनंदिकृत करीब ५०० वर्ष प्राचीन पंजिका टीका जीवराज ग्रंथमाला से छप चुकी है पृष्ठ ४७९ पर इस विषय में वहाँ लिखा है : "जिन बिम्ब स्नानस्याधः स्नानंचक्रे।" (जिनाभिषेक की नाली के नीचे उन्होंने स्नान किया) इससे भी यहाँ स्पष्ट 'अधः पाठ ही सिद्ध होता है।

प्रमाणित नहीं है। उत्तर पुराणकार के पास प्रथमानुयोग की स्वतंत्र रचना करने का अवसर ही होता तो वे उत्तर पुराण को ही जहाँ विस्तार की नितांत आवश्यकता थी इतना संक्षिप्त नहीं बनाते खैर, कुछ भी हो मूल जिनदत्त चरित्र से भी स्त्रीप्रक्षाल की कोई सिद्धि नहीं होती।

६–आदि पुराण (जिनसेनाचार्य कृत) पर्व ४३—

तत्प्रतिष्ठाभिषेकान्ते महापूजा प्रकुर्वती ।।१७४।।

अर्थ—वह सुलोचना अनेक जिनमंदिर बणाय जिन प्रतिमा का अभिषेक करि महा पूजा करे।

समीक्षा—

मूल में कहीं भी सुलोचना के द्वारा जिनाभिषेक नहीं बताया है बल्कि यह लिखा है कि—"प्रतिष्ठा और अभिषेक हो जाने के बाद उसने तो सिर्फ पूजा की थी" इससे तो उल्टा स्त्रियों के द्वारा जिनाभिषेक का निषेध सिद्ध होता है। इस पर भी कोई अन्यथा अर्थ करे तो इसका ग्रंथ या अन्य कोई क्या करे।

वचनिका में तो सुलोचना के द्वारा जिन मंदिर बनाना लिखा है जबकि वह स्वयं जिनमंदिर नहीं बना सकती, बनवा सकती है। इसी तरह अभिषेक कराने को अभिषेक करना लिख दिया है। इसके सिवा प्रतिष्ठा

और अन्ते शब्द को कोई वचनिका ही नहीं दी है। अतः वचनिका स्खलित है। मूल शब्द सामने होते भी उनका सही अर्थ न देकर स्खलित वचनिका देना सिवा कारस्तानी के कुछ नहीं है।

इस प्रकार जो भी प्राचीन आचार्यों के नाम से प्रमाण दिये गये हैं उनके सही अर्थ करने पर स्त्री द्वारा जिनाभिषेक सिद्ध ही नहीं होता प्रत्युतः निषेध सिद्ध होता है। कुछ प्रमाण मूल संघ से भिन्न जैनाभास संघों के और भट्टारकादि के भी दिये जाते हैं वे वैसे ही अमान्य और अप्रामाणिक हैं फिर भी उन पर नीचे विचार किया जाता है।

७—पद्म पुराण पर्व ३ श्लोक १८४, हरिवंश पुराण सर्ग ८ श्लोक १७२-१७४ तथा सर्ग ३८ श्लोक ५४ में नवजात तीर्थंकर बालक का इन्द्राणियों द्वारा भी अभिषेक करना बताया है। इन दोनों पुराणों को जो काष्ठा संघ का बताया जाता है वह मिथ्या है। काष्ठा संघ तो इन दोनों के बाद हुआ है।

समीक्षा—

महापुराणादि में तो ऐसा भी बिल्कुल नहीं बताया है यह नियोग भी इन्द्र और देवों का ही बताया है। तीर्थंकर माता, पुत्र का धारण पोषण

करती है अन्य देवियाँ और स्त्रियां भी तीर्थंकर बालक का लालन-पालन शृंगारादि करती हैं यह सब अवयस्क अपूज्य अवस्था की बातें हैं जो सब लौकिक हैं इनको अभिषेक वंदनादि नित्यकालीन धर्म क्रिया का आधार बनाना अज्ञता है। पूजनीय तो संयमावस्था है उस अवस्था में किसी भी स्त्री का स्पर्श जायज नहीं। मूर्ति भी संयमी अवस्था की है बाल्यावस्था की नहीं अतः उसका भी स्त्री द्वारा स्पर्श जायज नहीं।

पद्मपुराण और हरिवंश पुराण को जो काष्ठासंघ का बताया जाता है वह मिथ्या नहीं है किन्तु सत्य है काष्ठासंघ इनसे पहिले हुआ है देखो—(क) "चर्चासागर" जो इन लोगों का महामान्य ग्रंथ है इसके पृष्ठ ५ पर रविषेण कृत पद्मपुराण को काष्ठासंघी बताया है। इसी चर्चासागर पृष्ठ ४४४ पर काष्ठासंघ को जैनाभास बताते हुए लिखा है कि इन्होंने अनेक सिद्धांत विरुद्ध दोषास्पद बातें अपने ग्रंथों में निरुपण की हैं सो सम्यग्ज्ञानियों के श्रद्धान करने योग्य नहीं हैं क्योंकि इन जैनाभासों का श्रद्धान ज्ञान आचरण सब मूलसंघ से विरुद्ध है, इनकी क्रिया आचरणादि शिथिल और हीन है।

इन्द्रनंदिजी ने नीतिसार में प्रामाणिक आचार्यों की सूची दी है उसमें रविषेण का कोई नाम नहीं दिया है। पं. आशाधरजी ने भी अपनी विस्तृत टीकाओं में महापुराणादि के तो उद्धरण दिये हैं किन्तु पद्मपुराण का एक भी उद्धरण नहीं दिया है। उन्होंने अपने प्रतिष्ठा सारोद्धार में "महर्षि पर्युपासन" लिखा हैं उसमें अनेक आचार्यों के नाम दिये हैं किन्तु वहाँ भी रविषेण का कोई नाम नहीं दिया है। जैनाभास होने की वजह से जो सिद्धान्त विरुद्ध अनेक कथन पद्मचरित में पाये जाते हैं उनके लिए "जैन निबंध रत्नावली" का अन्तिम निबंध देखो। पद्मचरित का रचनाकाल वि. सं. ७३३ है और दर्शनसार की गाथा ३८-३९ के अनुसार काष्ठासंघ के प्रवर्तक कुमारसेन वि. सं. ७५३ में मरण को प्राप्त हुए इससे सिद्ध है कि इस संघ का प्रचार कुमारसेन द्वारा बहुत पहिले हो चुका था अतः पद्मचरित के काष्ठासंघी होने में या काष्ठासंघ से प्रभावित होने में कोई बाधा नहीं है कुछ भी हो जैनाभास तो यह है ही। मूल संघी ग्रंथ तो यह किसी तरह है ही नहीं। हरिवंश पुराण तो काष्ठासंघी ही है जैसा कि आगे बताया जा रहा है, हरिवंश पुराणकार ने रविषेण

को स्मरण किया है इससे भी पद्मचरित के काष्ठासंघी होने की ही पुष्टि होती है।

(ख) हरिवंश पुराण वि. सं. ८४० की रचना है जबकि काष्ठासंघ इससे १००-१२५ वर्ष पहिले प्रचलित हो चुका था। हरिवंश पुराणकार ने काष्ठासंघ के प्रवर्त्तक कुमारसेन का अपने ग्रंथ में स्मरण किया है। इससे स्पष्टतः ये काष्ठासंघी प्रमाणित हैं। विशेषवादी और वीरसेन के बीच में इन कुमारसेन का स्मरण किया है इससे भी काष्ठासंघ का प्रवर्त्तन वि. सं. ७२५ के आस-पास सिद्ध होता है। मल्लिषेण प्रशस्ति में भी पात्र केसरी और अकलंक देव के बीच में इन कुमारसेन का स्मरण किया गया है इससे भी काष्ठासंघ का उक्त काल ही सही ठहरता है।

'दर्शनसार' गाथा ३० पर सम्पादकादि द्वारा "काष्ठासंघ की उत्पत्ति" रूप कल्पित शीर्षक अपनी ओर से दिये जाने के कारण उत्तर पुराणकार गुणभद्र (वि. सं. ९०५ करीब) के बाद काष्ठासंघ के काल का भ्रम पैदा किया गया है वह ठीक नहीं है वह शीर्षक गाथा ३३ के ऊपर लगना चाहिये था वहीं से गाथा ३९ तक काष्ठासंघ का वर्णन है, गाथा

३८ में स्पष्ट रूप से काष्ठासंघ के प्रवर्त्तक कुमारसेन का मरण काल विक्रम संवत् ७५३ दिया है वही सही है।

गुणभद्रकालीन विनयसेन और गाथा ३३ में बताये कुमारसेन के गुरु विनयसेन दोनों जुदा-जुदा हैं। गुणभद्र कालीन विनयसेन के कुमार सेन शिष्य का कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। नामसाम्य से ही यह भ्रम हुआ है।

"जैन निबंध रत्नावली" पृष्ठ ४०१ पर इस विषय में लिखा है—

"हरिवंश पुराणकार जिनसेन भी मूलसंघी नहीं हैं ये तो खुद ही अपने को पुन्नाट संघी लिखते हैं। पुन्नाट संघ काष्ठासंघ का ही एक उपभेद है। काष्ठासंघ की गणना जैनाभासों में की जाती है। काष्ठासंघ में चार गच्छ हैं—माथुरगच्छ, बागड़ गच्छ, लाड बागड़ गच्छ और नंदीतट गच्छ। "भट्टारक संप्रदाय" पुस्तक के पृष्ठ २५७ में लिखा है कि—लाड बागड़ गच्छ के आचार्य पहिले पुन्नाट अर्थात् कर्णाटक प्रदेश में बिहार करते थे इसलिये इसका नाम पुन्नाट था बाद में उनका प्रमुख कार्यक्षेत्र लाड बागड़ अर्थात् गुजरात प्रदेश हो गया अतः इसका नाम

लाड बागड़ गच्छ पड़ा, इसी का संस्कृत रूप 'लाट वर्गट' है। 'भट्टारक संप्रदाय के लेखांक ६३१ में जो पट्टावली का संस्कृत उद्धरण दिया है उससे प्रकट होता है कि—पुन्नाट गच्छ का ही नामान्तर लाट-वर्गट गच्छ है। "सूरत और उसके जिले के मूर्त्ति लेख संग्रह" नाम की पुस्तक के पृष्ठ ७४ पर नंदीतट गच्छ की पट्टावली छपी है उसमें भी काष्ठासंघ के चार गच्छों में पुन्नाट गच्छ का नाम लिखा है। जैन शिलालेख संग्रह भाग २ में अर्क कीर्ति मुनि (विक्रम सं. ८७०) को यापनीय-नंदिसंघ पुन्नाग वृक्ष मूलगण का बताया है। पुन्नाट संघ से इसका संबंध रहा है।★ यह तो सब जानते हैं कि—यापनीय संघ, काष्ठासंघ, द्राविड संघ आदि जैनाभास माने जाते हैं। जैसा कि—"दर्शनसार" में देवसेनाचार्य (१०वीं शताब्दी) ने लिखा है। हरिवंश पुराण में द्राविड संघ के स्थापक वज्रसूरि, काष्ठासंघ के प्रवर्त्तक कुमारसेन और यापनीय संघ के आचार्य विशेषवादी इन तीनों ही का स्मरण किया गया है इससे हरिवंश पुराणकार जैनाभास (काष्ठासंघी) प्रमाणित होते हैं। हरिवंश पुराण में अनेक सिद्धांत विरुद्ध कथन

★पुन्नाट का अर्थ द्रविड भी संभव है अतः द्रविड संघ से भी इसका संबंध रहा है।

पाये जाते हैं जैसे—उसी जन्म में पदवी धारी नारद की मुक्ति बताई है। जबकि सभी दि. ग्रंथों में नारदों का नरक गमन बताया है क्योंकि वे कलह प्रिय होते हैं। अन्य बातों के लिये "जैन निबंध रत्नावली" का अन्तिम निबंध द्रष्टव्य है। इन्द्रनंदि और आशाधर ने प्रामाणिक आचार्यों की जो नामावली दी है उसमें हरिवंशपुराणकार को कहीं भी सम्मिलित नहीं किया है। जिन जिनसेन का स्मरण किया है वे आदि पुराण कार हैं और मूल संघी हैं।

दि. आम्नाय में यापनीय संघ बहुत प्राचीन है। शाकटायन व्याकरण के कर्त्ता इसी संघ के थे उन्होंने स्त्री मुक्ति शूद्र मुक्ति केवलि भुक्ति प्रकरण लिखे हैं जिनमें श्वेतांबरीय मान्यताओं की सम्पुष्टि की गई है। अतः दि. यापनीय संघ को अर्ध श्वेतांबर कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं है। इसी संघ से प्रभावित पद्मपुराण और हरिवंश पुराण हैं इसी से इनमें जन्मकल्याणक (लौकिक क्रिया) के अवसर पर इन्द्राणियों द्वारा अभिषेक बताया है जबकि मूलसंघी महापुराणादि में जन्म कल्याणक के लौकिक अवसर पर भी इन्द्राणियों द्वारा अभिषेक नहीं बताया है। अतः पद्म पुराण और हरिवंश पुराण स्वतः

प्रमाण नहीं हैं परतः प्रमाण हो सकते हैं इसका मतलब यह है कि—इनमें जो कथन मूल-संघ से मिलते हों वे तो प्रमाण हैं मान्य हैं और जो न मिलते हों वे (मान्य आचार्यों के कथनों से बाधित होने के कारण) अमान्य और अप्रामाणिक हैं। फिर भी इन ग्रंथों से जो अनेक प्रमाण दिये जाते हैं उनसे भी स्त्री द्वारा जिनाभिषेक सिद्ध नहीं होता, देखो—

८—पद्म पुराण सर्ग १७ :—

प्रतिमा देव देवानां प्रतीके सद्मनस्तया ।
स्थापयित्वार्चिता भक्त्या स्तुति मंगल वक्त्रया ।।१६७।।

अर्थ—वह लक्ष्मीमतीरानी अपने महल में जिन प्रतिमा स्थापन कर पूजन किया करती थी।

समीक्षा

इसमें कहीं भी अभिषेक की कोई बात नहीं लिखी गई है। ज्ञानपीठ से प्रकाशित संस्करण में पं. पन्नालालजी सा. ने 'स्थापयित्वा' का अर्थ प्रतिमा "स्थापित कराकर" ऐसा अर्थ किया है जो योग्य और समुचित है। फिर भी प्रतिमा-स्थापन अर्थ का ही आग्रह हो तो ऐसा समझना चाहिये कि रानी जैसी समर्थ स्त्री के अनेक नौकर चाकर परिवार-जन थे उन्होंने प्रतिमा स्थापित की थी कथन को

संक्षिप्त रूप देने की दृष्टि से तथा रानी की अर्हद् भक्ति बताने की दृष्टि से उसे मुख्य करके ऐसा कथन कर दिया है। आशय सदा सुसंगत, निर्दोष और आम्नायानुसार ही ग्रहण करना चाहिये।

९—पद्मपुराण सर्ग १७—

प्रतिमां च प्रवेश्यैनां पूर्वदेशे व्यतिष्ठपत् ।
आनर्च च विचित्राभिः सुमनोभिः सुगंधिभिः ।।१९३।।

अर्थ—(अंजना के पूर्वभव में) उस लक्ष्मीमती रानी ने (संयम श्री आर्यिका के उपदेशानुसार) जलाशय में से उस जिन-प्रतिमा को निकालकर विराजमान किया और पूजन की। जो स्त्री आर्यिका के उपदेश से प्रतिमा स्पर्श कर सकती है वह जिनाभिषेक भी कर सकने का अधिकार रखती है।

समीक्षा

रानी का नाम गलत दिया गया है, अंजना पूर्व-भव में लक्ष्मीमती रानी नहीं थी कनकोदरी महारानी थी लक्ष्मीमती तो उसकी सौत थी। लक्ष्मीमती के द्वारा पूजन की बात तो ऊपर के श्लोक नं. १६७ में ही बताई जा चुकी है, ग्रंथकार पुनरुक्ति क्यों करते? इसके सिवा महारानी जैसी समर्थ स्त्री जलाशय में प्रतिमा निकालने को स्वयं क्यों उतरेगी? उसकी

आज्ञा में तो बहुत से मनुष्य थे। मूल पद्मपुराण में कहीं भी प्रतिमा को जलाशय में डालने और वहाँ से वापिस निकालने का कथन नहीं है प्रत्युतः श्लोक नं. १६८ में बताया है कि–लक्ष्मीमती द्वारा स्थापित कराई जिन प्रतिमा को उस कनकोदरी ने क्रोधवश बाहर निकलवा दिया था इसके बाद यहाँ श्लोक नं. १९३ में बताया है कि—कनकोदरी ने "एनां प्रतिमां प्रवेश्य" उस प्रतिमा को वापिस अंदर प्रविष्ट कराकर पूर्वस्थान पर विराजमान करा दिया था। यही अर्थ ज्ञानपीठ संस्करण में पं. पन्नालालजी सा. ने किया है जो सम्यक् है। पद्मपुराण में संयम श्री आर्यिका ने जलाशय में से प्रतिमा निकालने का या प्रतिमा छूने का उपदेश रानी को कतई नहीं दिया था, रानी ने जो प्रतिमा का अनादर करवाया था उस महान् कर्मबंध का वर्णन किया था तब नरक गति के भय से रानी ने स्वयं प्रतिमा को यथास्थान रखवा दिया था।

१०–पद्मपुराण सर्ग १७–

मुनिसुव्रत नाथस्य विन्यस्य प्रतियातनां।
अर्चयन्त्यौ सुख प्राप्त्यै स्वामोदैः कुसुमैरलं ॥२९०॥

अर्थ—उस गुफा में वे दोनों (अंजना और सखी बसंतमाला) मुनिसुव्रत नाथ की प्रतिमा स्थापन कर पूजन करती थी।

समीक्षा

इस प्रमाण में भी कहीं भी अभिषेक नहीं लिखा है। प्रतिमा स्थापन की बात लिखी है सो इसके पूर्व के श्लोक नं. २८९ में स्पष्ट बताया है कि– "देवं समाश्रित्य" उस गंधर्व देव का आश्रय लेकर प्रतिमा स्थापम की थी इससे साफ फलित है कि– गंधर्व देव ने ही प्रतिमा स्थापित की थी उन दोनों स्त्रियों ने नहीं।

११—पद्मपुराण पर्व ९६—

अभिषेकैर्जिनेन्द्राणामत्युदारैश्च पूजनैः।
दानै रिच्छाभिपूरैश्च, क्रियतामशुभैरणं ॥१५॥
एव मुक्ता जगौ सीता देव्यः! साधु समीरितं।
दानं पूजाऽभिषेकश्च तपश्चाशुभ सूदनं ॥१६॥

अर्थ—अशुभ के नाश हेतु जिनपूजाऽभिषेक करो और दान दो ऐसा साधु ने सीता को कहा, सीता ने इसे स्वीकार किया।

समीक्षा

"साधु ने सीता को कहा" ऐसा जो अर्थ किया है वह बिल्कुल गलत है यहाँ किसी साधु का कोई

कथन नहीं है। ठीक अर्थ इस प्रकार है कि—देवियों ने सीता को ये सब बातें कहीं तब सीता ने कहा कि—हे देवियों! तुमने ठीक कहा। यहाँ 'साधु' शब्द सम्यक्=ठीक अर्थ में प्रयुक्त है। साधु=मुनि अर्थ में नहीं। आगे श्लोक १८ से २४ में बताया है कि—सीता की आज्ञा से वैभव के साथ दान पूजा-अभिषेक किये गये। इस तरह इस प्रकरण में कहीं पर भी स्वयं सीता द्वारा जिनाभिषेक करना नहीं बताया है।

१२—हरिवंश पुराण सर्ग २२—

जिनवेश्म तवास्थाप्य तौ प्रविष्टौ प्रदक्षिणा ॥२०॥
अभिषिच्य जिनेन्द्रार्चामर्चितां नृसुरासुरैः ॥२१॥

अर्थ—सारथी ने दोनों को मंदिर पहुंचा दिया। कुमार और गंधर्व सेना ने जिनालय में प्रवेशकर प्रदक्षिणा दी और भगवान् का अभिषेक किया।

समीक्षा

यहाँ पर समुच्चय कथन है। साक्षात् अभिषेक तो कुमार ने ही किया था गंधर्व सेना तो दर्शक रूप में अनुमोदक अथवा प्रेरक थी। कृत की तरह कारक और अनुमोदक को भी वही फल होता है इस दृष्टि से ऐसा कथन-प्रयोग किया है। शब्दों का सम्यक् अर्थ ग्रहण करना ही तो विवेक है।

१३--आराधना कथा कोश पृ. ४०२ रात्रि भोजन त्याग कथा में लिखा है :—

ततस्तयोर्जिनेन्द्राणां महास्नपनपूर्वकं।
कल्याणदायिनीं पूजां पात्रदान सुखप्रदं ॥१८॥
कुर्वतो सुखतः कैश्चिन्मासैर्जातः सुतोत्तमः ॥१९॥

अर्थ—सेठ और सेठानी के, अभिषेक पूर्वक पूजन करते हुए तथा पात्रदान करते हुए कुछ महीने बाद पुत्र पैदा हुआ।

समीक्षा

यहाँ भी समुच्चय कथन है। इसमें दोनों के ही पुत्र पैदा होना भी बताया है जबकि पुत्र सेठानी के उदर से पैदा हुआ था सेठ के से नहीं इसी तरह अभिषेक सेठ ने किया था सेठानी ने नहीं।

१४--(A) दशलक्षण व्रत कथा, सुगंधदशमी कथा, व्रत कथा कोश, जैनव्रत कथा संग्रह में व्रत की विधि में स्त्रियों को अभिषेक करने के लिये कहा है।

(B) आराधना कथा कोश पृष्ठ ४२१ श्लोक ३९ में वृषभसेना द्वारा तथा नेमिचंद्र कृत श्रीपाल चरित्र पृष्ठ ६ में मैना सुंदरी द्वारा अभिषेक करना बताया है।

समीक्षा

(A) ये सब व्रत पुरुषों और स्त्रियों दोनों के लिये बताये हैं केवल स्त्रियों के लिये नहीं। ये व्रत सच्छूद्र भी कर सकते हैं अतः व्रत की विधी में अभिषेक पूजादि जो जैसा जिसके योग्य हो उसे वैसा ही करना चाहिये। मर्यादा-सीमा के बाहर कोई क्रिया करना अनुचित है सामान्य कथन में यथा योग्य अर्थ ग्रहण करना चाहिये अन्यथा गलत क्रिया से पुण्य के बजाय पाप बंध होता है।

(B) किसी की मुख्यता से कोई कथन किया गया हो तो वह उसका न मान कर निर्दोष सगत अर्थ लेना चाहिये। सबको अपनी अपनी सीमानुसार ही अपने योग्य क्रिया करनी चाहिये वही वैध और मान्य होती है।

नीति में भी कहा है—

अव्यापारेषु व्यापारं, यो नरः कर्त्तुमिच्छति।
स एव निधनं याति, कीलोत्पाटीव वानरः॥

अर्थ—जो नहीं करने योग्य क्रिया करता है वह मरण को प्राप्त होता है जैसे फंसी हुई कील को निकालने वाला वानर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

१५--गौतम चरित्र (मंडलाचार्य धर्मचन्द्र कृत) सर्ग ३—

श्री वीरनाथ बिम्बस्य स्नपनं क्रियते मुदा ॥१६॥
ततः पूजा प्रकर्त्तव्या वीरस्य सलिलादिभिः ॥१७॥

अर्थ—मुनिराज कन्याओं को उपदेश देते हैं—जिन बिम्ब का अभिषेक करना चाहिये फिर अष्ट द्रव्यों से पूजा करना चाहिये।

समीक्षा

मूल में "अभिषेक करना चाहिये" ऐसा नहीं लिखा है किन्तु यह लिखा है कि—"अभिषेक किया जाता है फिर पूजा करना चाहिये" अर्थात्-पुरुषों के द्वारा अभिषेक हो जाने पर फिर पूजा करना चाहिये। यह सामान्य कथन सभी के लिये है सभी को अपनी योग्यता और अधिकार के अनुसार अभिषेक पूजादि करना चाहिये इसी में अविसंवादिता और श्रेयस्कारिता है।

१६--इंदौर से प्रकाशित पुराण अंक में (पं. परमेष्ठीदासजी ने) लिखा है :—पूजा प्रक्षाल तो आरंभ होने के कारण कर्मबंध के कारण हैं जबकि आर्यिका का होना संवर निर्जरा का कारण है। एक स्त्री मोक्ष के कारण भूत संवर निर्जरा का कार्य तो कर सके और संसार के कारण भूत बंध कारक पूजन प्रक्षालादि न कर सके यह कैसे संभव हो सकता है ?

समीक्षा

पूजा प्रक्षाल तो मनुष्य और देवादि भी करते

हैं। पूजा भक्ति और महाव्रत की दीक्षा ये सब प्रशस्त राग होने से पुण्य बंध के ही कारण हैं इनके साथ जो वीतराग भाव (निश्चय चारित्र) है वही सवर निर्जरा का कारण है, सम्यग्दृष्टि के दोनों भाव एक साथ होते हैं ऐसी हालत में आर्यिका होने को एक-मात्र संवर निर्जरा का कारण बताना गलत है। स्त्री के जिनपूजनादि पुण्य कार्यों का निषेध किसी ने नहीं किया है सिर्फ प्रक्षाल (प्रतिमा-स्पर्श) का निषेध किया है जिसका कारण स्त्री पर्याय की अशुद्धि है। (आर्यिका को मोक्ष की प्राप्ति होना बताना भी दि. धर्म विरुद्ध है)।

१७--स्व. पं. भूधरदासजी मिश्र कृत "चर्चा समाधान" पृ. ६४ में लिखा है—इहाँ कोई कहे स्त्री पूजा करे यह तो सुनी है पर अभिषेक न करे ताका उत्तर—पूजा तो अभिषेक बिना होती नहीं यह नियम है। मैना सुंदरी अभिषेक न कीना तो गंधोदक कहाँ से लाई। स्त्री के स्पर्श का कुछ ऐसा द्वेष होता तो स्त्री का किया तथा स्त्री के हाथ सूं आहार साधु काहे को लेते तिसतें स्त्रीनि को पूजा अभिषेक का निषेध नांही।

समीक्षा

साक्षात् (सजीव) देवशास्त्रगुरु की पूजा तो बिना अभिषेक के ही होती है क्योंकि इनका अभिषेक (स्नान) होता ही नहीं। रही प्रतिमा सो जैसे सच्छूद्र (पंचम गुण स्थानी) बिना अभिषेक के ही प्रतिमा की पूजा करता है वैसे ही स्त्री भी करती है जैसे सच्छूद्र के यज्ञोपवीत नहीं होता वैसे स्त्री के भी नहीं होता। तिर्यंच भी पंचम गुणस्थानी तक होते हैं वे भी पूजा करते हैं किन्तु उनके लिए अभिषेक नहीं बताया है। विवाह के वक्त वर बिना अभिषेक के ही पूजा करता है दर्शन करने वाले प्रतिदिन जो अक्षतादि अर्घ चढ़ाते हैं वह भी पूजा ही है वह बिना अभिषेक के ही होती हैं। अमितगति श्रावकाचार में लिखा है—

वचो विग्रह संकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते।
तत्र मानस संकोचो भाव पूजा पुरातनैः॥

(स्तोत्र पाठादि से वचन द्वारा और प्रदक्षिणा-नमस्कारादि से शरीर द्वारा द्रव्यपूजा होती है एवं ध्यान जप से मन द्वारा भावपूजा होती है) इसमें कहीं भी अभिषेक नहीं बताया है। मुनिराज तो ऐसी ही पूजा करते हैं बिना अभिषेक के ही उनके

अर्हंत्पूजा होती है। प्राचीन समय में तो सबके लिये यही पूजा चैत्यवंदन की पद्धति थी। पूजा और अभिषेक का शास्त्रों में जुदा-जुदा वर्णन है बिना अभिषेक के भी अष्ट द्रव्य पूजा होती है और बिना पूजा के भी केवल अभिषेक होता है। पूजा कोई करे और अभिषेक कोई अन्य ऐसा भी होता है। समन्तभद्राचार्य ने वैयावृत्य में ही पूजा का समावेश किया है वहाँ अभिषेक का कोई वर्णन ही नहीं किया है। मैना सुंदरी को गंधोदक लाने के लिये स्वयं जिनाभिषेक करने की कोई जरूरत नहीं थी, दूसरों के किये अभिषेक=गंधोदक को ही वह लाई थी। मैना सुंदरी ही क्या कोई भी ऐसा कर सकते हैं। स्त्री के हाथ से साधु आहार लेते हैं किन्तु स्त्री उनका स्पर्श नहीं कर सकती उसी तरह स्त्री जिन-पूजा कर सकती है किन्तु प्रतिमा को नहीं छू सकती। इस तरह स्त्री द्वारा अभिषेक का निषेध तो सिद्ध होता है किन्तु पूजा का निषेध नहीं।

"वीर वाणी" के टोडरमल अंक पृष्ठ २८१ में लिखा है कि इस चर्चा समाधान ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति में निम्न उल्लेख पाया जाता है—"इस ग्रंथ में १३८ प्रश्न का उत्तर है या ग्रंथ को सवाई

जयपुर विषै टोडरमलजी ने बांच्या सो प्रश्न बीस तीस का उत्तर तो आम्नाय सूं मिले है अवशेष प्रश्न का उत्तर आम्नाय सूं मिले नांही सो बुधजन को यह ग्रंथ बांचि भ्रम में नहीं पड़ना। और मूल ग्रंथा सूं मिलाय लेणा। भूधरमलजी बीच टोडरमलजी विशेष ज्ञाता हैं जिन्होंने गोम्मटसारादि ग्रंथों की वचनिका बनाई अर अन्य घणां ग्रंथ देख्या सो इहाँ इन्हीं का वचन प्रमाण है। यां में संदेह नाहीं ज्यां सूं केतीक बातां की अन्य ग्रंथा सूं ठीक कर लेणी अर इहमाफिक प्रवृत्ति करना नाही।" इससे सिद्ध है कि—"चर्चा समाधान" कोई प्रामाणिक कृति नहीं है अतः इसका प्रमाण देना व्यर्थ है।

पं. टोडरमलजी के अनन्य सहयोगी ब्र. रायमलजी ने स्त्री प्रक्षाल निषेध के लिए अपने "चर्चासार संग्रह" ग्रंथ में प्रश्नोत्तर रूप में इस प्रकार स्पष्ट लिखा है—प्रश्न—क्या स्त्री भी जिन-पूजन कर सकती है? समाधान—पूजा तो मुख्यपणे पुरुष ही करे और गौणपणे स्त्री भी करे। स्त्री भी स्नान करके कंचुकी सहित धुले उज्ज्वल वस्त्र पहिनकर प्रक्षाल किये बिना मात्र पूजा करे।

१८--भगवती विश्ववंद्या आर्यिका का पद तक

स्त्री प्राप्त कर लेती है फिर वह प्रतिमा-स्पर्श के योग्य क्यों नहीं ?

समीक्षा

श्रावकाचारों में ऐलक को "आर्य" भी लिखा है उसी का स्त्रीलिंग रूप आर्यिका है इसी से स्त्रियों में ऐलिका पद नहीं है वह आर्यिका में ही है।

प्रश्न—तब फिर उन्हें श्रमणी, साध्वी, संयतिका, महाव्रती कैसे कहते हैं ?

उत्तर—यह सब उपचार से है उनका महाव्रत, संयम, श्रमणत्व, साधुत्व दि. धर्म में उपचार से आरोपित माना है★ वस्तुतः नहीं, इसी से उनके छट्ठा गुण स्थान नहीं माना और इसी से वे पूज्य पंच परमेष्ठी में भी नहीं हैं भले ही वे ऐलक से कुछ ऊंची हों। एक साड़ी धारण करने से वे अपरिग्रही

★उपचार कथन के लिए देखो—"आचार सार" अध्याय २ श्लोक ८९ तथा सूत्र पाहुड गाथा २४ और मोक्ष पाहुड गाथा १२ की श्रुतसागरी टीका। गृहस्थ को भी रत्नकरण्ड श्रावकाचार में--चेलोपसृष्ट मुनिरिव गृही तदा याति यतिभावं ॥१०२॥ (सामायिक में मुनि की उपमा दी है) इसी तरह श्रावक के दिग्व्रत देशावकाशिक व्रत को भी महाव्रत तुल्य बता दिया है देखो श्लोक ७०, ९५ किन्तु फिर भी गृहस्थ षष्ठ गुणस्थानी नहीं हो जाता इसी तरह आर्यिका को समझना चाहिये।

(निर्ग्रंथ) नहीं हैं तथा वस्त्र एवं अंगों की शुद्धि आदि करने से निरारंभ नहीं हैं अतः उनकी अष्टद्रव्य से पूजा और नवधा भक्ति शास्त्रोचित नहीं है। भाव-संग्रह में लिखा है—

स्वभावःकुत्सितस्तासां लिंगं चात्यंत कुत्सितं।
तस्मान्न प्राप्यते साक्षाद् द्वेधा संयम भावना ॥२४६॥

(स्त्रियों का स्वभाव कुत्सित है और उनकी पर्याय भी अशुचि है इसी से उनके साक्षाद् संयम-इन्द्रिय संयम और प्राणि संयम दोनों नहीं होते) यही बात सूत्र पाहुड गाथा २६ में कही है कि—स्त्रियों का चित्त निर्मल नहीं होता उनके परिणाम भी स्वभाव से शिथिल होते हैं अतः उनके व्रतों की दृढ़ता (महाव्रतादि) नहीं होते। गाथा २४ तथा २५ में तो स्त्रियों के स्पष्ट प्रव्रज्या=दीक्षा का ही निषेध किया है—"इत्थीसु ण पावया भणिया।" कुन्दकुन्दाचार्य ने सूत्र-पाहुड गाथा २१-२२ तथा दर्शन पाहुड गाथा १८ में ३ लिंग (वेष) बताये हैं—१ साधु २ उत्कृष्ट श्रावक ३ आर्यिका। इसमें भी आर्यिका को तीसरे नंबर पर रखा है।

बहुत काल की दीक्षिता वृद्धा विदुषी गणिनी आर्यिका को भी नव दीक्षित किशोर अल्पज्ञ साधु की भी वंदना करनी होती है। इसका कारण यही है कि—वह षष्ठ गुणस्थानी (संयमी) नहीं होती

जबकि साधु होता है, इसी से आर्यिका "विश्व-वंदनीया" होने पर भी संयतों की वंदनीया नहीं होती। इसी तरह "भगवती" में भी 'भग' के अनेक अर्थ हैं—कांति, यश, योनि, ज्ञान, वैराग्य, मोक्ष आदि। यहाँ 'मोक्ष' को छोड़कर यथोचित अर्थ ग्रहण कर लेना चाहिये। शब्दों से भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये। ग्रंथों में अविरत श्रेणिक को 'श्रावकोत्तम' नारद को 'मुनि' (नारद मुनि) क्षुल्लक को 'मुनि-कुमार', काचको 'मेचक-मणि' तक कह दिया है卐 'वचने का दरिद्रता', "प्रशस्त-वाचश्चतुराः वंदति" (वचन में क्या कंजूसी करना, सुंदर वाणी बोलना ही चतुराई है) यह कवि-संप्रदाय है, इसी से वे दीपक के बुझने को 'नंदना' तथा घड़े के फूटने को 'मगलना' कहते हैं (गतस्य दीपस्य हि नंदितत्वं, दृष्टं कपालस्य च मंगलत्वं ॥२८॥ विषापहार स्तोत्र) इसी से कवियों के लिए कहा है कि—'कवयः संति निरंकुशाः,' "शास्त्रेषु भ्रष्टाः कवयो भवंति।"

卐"स्वामी" शब्द संघनायक-आचार्य का वाची है जैसे—महावीर स्वामी, स्वामी समन्तभद्र। किन्तु सोनगढ़ के अविरती श्री कानजी भी "कानजी स्वामी" कहलाते हैं। आर्य समाजियों में भी श्री दयानंदजी "स्वामी दयानंद" कहे जाते हैं।

प्रश्न—हरिवंश पुराण सर्ग ४६ में लिखा है कि—स्वजन कृताभिनिष्क्रमण पूजनिकां ॥२४॥ (कृष्ण ने नवदीक्षित आर्यिका की पूजा की)

उत्तर—इसमें तो दीक्षा के पहिले गृहत्याग के वक्त जो सवारी निकाली जाती है उस पारिवारिक सम्मान को पूजन शब्द से व्यक्त किया है, अष्टद्रव्य पूजा का यहाँ कोई संदर्भ नहीं है।

प्रश्न—तीर्थंकर माता भी स्त्री होती है।

उत्तर—माता हो चाहे तीर्थंकर-पिता या स्वयं तीर्थंकर, पूज्यता तो संयम (छठे गुणस्थान) से आती है। और वह स्त्रियों में होता नहीं इसी से उनके यज्ञोपवीतादि संस्कार भी नहीं होते यही हालत शूद्रों की है, इसी से दोनों को प्रतिमा-स्पर्श के योग्य नहीं माना गया है। कुन्दकुन्द दि. आम्नाय यही है।★

१६--यदि कोई स्त्री अभिषेक करते वक्त रजस्वला हो जाये तो क्या प्रायश्चित्त ? ऐसा प्रश्न ही बेकार है ऐसे तो मुनि आदि को आहार देते समय रजस्वला हो जाये तो क्या करे ? वास्तव में बात

★जितना हम भावुकतावश यथोचित सीमा से ज्यादा आर्यिका (सवस्त्र) पद को महत्व देंगे उतने ही स्त्री मुक्ति (श्वेतांबरत्व) सिद्धांत की ओर अग्रसर होंगे अतः इस विषय में सावधानी की जरूरत है।

यह है कि स्त्री को अपने रजस्वला होने का ज्ञान कुछ समय पहिले हो जाता है अतः वे स्वयं ऐसे कामों से हट जाती हैं।

समीक्षा

सब स्त्रियों को और सदाकाल ऐसा मालूम हो जाने का कोई नियम नहीं है अतः ऐसी दुर्घटनाओं की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता। आहार के प्रति प्रश्न से मूल प्रश्न को छिपाना कमजोरी है। आहार के वक्त ऐसा होने पर मुनि अन्तराय मानकर वह आहार त्याग कर चले जायेंगे किन्तु जिनप्रतिमा तो मुनि से भी महान् होती है उसका क्या किया जाये? इसका प्रायश्चित्त और शुद्धिविधान किसी भी ग्रंथ में कुछ नहीं मिलता, मिले भी कहाँ से क्योंकि पहिले यह प्रथा थी ही नहीं। अब जिन्होंने यह दोषास्पद प्रथा चालू की है वे ही मनगढन्त प्रायश्चित्त भी बनावें।

२०--तीर्थंकर माता तो रजस्वला नहीं होती उनके विषय में यह बाधा भी नहीं।

समीक्षा—

रजस्वला तो कन्या भी नहीं होती ५५ वर्ष बाद प्रायः कोई स्त्री नहीं होती भोग भूमियां और देवियां

भी नहीं होतीं इससे ये सब न तो जिनाभिषेक की अधिकारिणी होती हैं और न मोक्ष तथा जिनदीक्षा की ही अधिकारिणी होती हैं। रजस्वला दोष ही एकमात्र दोष नहीं है किसी में यह शारीरिक दोष नहीं हुआ तो क्या हुआ स्त्रियोचित अन्य महान् सैद्धान्तिक दोष तो हैं ही। जिनमें यह दोष होता है उनके लिए यह भी कारण बनता है।

२१--पद्मावती के शिर पर भी तो पार्श्वप्रतिमा है।

समीक्षा—

सभी दि. श्वे. ग्रंथों में यही बताया है कि—उपसर्ग निवारण के समय धरणेन्द्र ने आकर पार्श्व प्रभु के शिर पर फणामंडप ताना था और पद्मावती ने श्वेत छत्र लगाया था कहीं भी यह नहीं बताया कि पद्मावती ने भगवान् का स्पर्श किया था ऐसी हालत में मूर्ति में पद्मावती के शिर पर पार्श्व का अंकन शास्त्र विरुद्ध आचार विरुद्ध और लोक विरुद्ध है। धरणेन्द्र के शिर पर भी पार्श्व प्रतिमा न बनाकर केवल पद्मावती के शिर पर बनाना स्त्री मुक्ति मानने वाले श्वे. और यापनीयादि जैनाभासों की यह परम्परा है। खजुराहो आदि में ऐसी प्राचीन अनेक

मूर्तियां हैं जिनमें धरणेन्द्र पद्मावती के बीच में एक ऊंचे स्तंभ पर पार्श्व प्रतिमा अंकित की गई है यह दि. शैली है। उचित अनुचित का विवेक न रखने से आज अनेक गलत परंपरायें हमने अपना ली हैं और सही परंपरायें छोड़दी हैं इस तरह दुहरा नुकसान हम उठा रहे हैं।

२२–दक्षिण प्रान्त में सभी जगह स्त्रियां अभिषेक पूजन करती हैं। दक्षिणी ग्रंथ "भरतेश वैभव" में स्त्री प्रक्षाल बताया है। आ. शांतिसागरजी ने इसी से उत्तर प्रान्त में भी इसका प्रचार किया।

समीक्षा

यह बिल्कुल असत्य है, दक्षिणी मंदिरों के गर्भ गृहों में तो स्त्रियों का प्रवेश तक निषिद्ध है तब उनके द्वारा जिनाभिषेक की बात मिथ्या ही है। भरतेश वैभव में स्त्री प्रक्षाल बताना भी भूल भरा है वहाँ तो कवि रत्नाकर ने स्पष्ट लिखा है कि—"रानियों के द्वारा उठाकर दिये जल घटों से भरतजी ने जिनाभिषेक किया और रानियों को अभिषेक देखने के लिये कहा" (पर्वाभिषेक पृष्ठ १३८)।

यहाँ कवि ने रानियों द्वारा जिनाभिषेक न बताकर उन्हें तो जिनाभिषेक देखने की ही अधिकारिणी बताया है। उनके द्वारा घड़ों को उठाकर देने का

कथन उनके सेविकापन और भरतजी के स्वामीपन को द्योतित करने के लिये किया है।

सभी जगह अभिषेक का जल कुए से पुरुष ही लाते हैं और वे ही प्रक्षाल भी करते हैं, स्त्रियां ये सब नहीं करतीं। कालदोष से कहीं कहीं कुछ अविवेकियों द्वारा स्त्री प्रक्षाल प्रारंभ हुआ है तो भी वहाँ जल तो पुरुष ही लाते हैं।

हिन्दुओं में भी स्त्रियाँ प्रतिमा को स्पर्श नहीं करतीं, यहाँ तक कि भगवान् के भोग सामग्री भी पुरुष ही बनाते हैं और वे ही भगवान् के भोग लगाते हैं, स्त्रियां नहीं।★

बहुत से बड़े लोगों के भी यहाँ रसोईया (महाराज) ही रसोई बनाता है उसी को प्राथमिकता है (अज्ञात वास में राजा विराट् के यहाँ भीम रसोईया बनकर रहे थे, द्रौपदी नहीं) यह सब स्त्री की अशुचिता-दोषास्पदता-अयोग्यता का द्योतक है।

★१. शूद्रो वानुपवीतो वा, स्त्रियो वा पतितोऽपिवा।
केशवं बा शिवं स्पृष्ट्वा ध्रुवं नरकमश्नुते॥
२. शालग्रामं न स्पृशेत्तु हीनवर्णो वसुंधरे।
स्त्री शूद्र करसंस्पर्शो, वज्रपातसमं भवेत्॥
३. जपस्तपस्तीर्थ सेवा प्रव्रज्या मंत्र साधनं।
देवताराधनं चैव, स्त्री शूद्र पतनानिषट्॥
—मनुस्मृति, आदि।

सन् १९२४-२५ में जब दक्षिण से आ. शांतिसागरजी का संघ इधर आया था तब उनके संघ में और इधर उत्तर प्रान्त में स्त्री प्रक्षाल का कतई प्रचलन नहीं था, कुछ वर्षों बाद उनके संघ के श्री चन्द्रसागरजी तथा पं. श्रीलालजी पाटनी ने अज्ञानता से इसका प्रचार प्रारंभ किया था तब यह १३-२० पंथ का भी विषय नहीं था, अगर होता तो सन् १९१० में प्रकाशित पं. उदयलालजी काशलीवाल की "संशय तिमिर प्रदीप" बृहद् पुस्तक में भी इसकी अवश्य चर्चा होती किन्तु उस वक्त २० पंथियों में भी "स्त्री प्रक्षाल निषेध" ही मान्य था।

२३–मूर्ति तो जड़ है, स्त्री स्पर्श से उसका क्या बिगड़ने वाला है अतः स्त्रियों को जिनाभिषेक से वंचित करना पापाश्रव का कारण है।

समीक्षा

मूर्ति पूज्य नवदेवों में है वह जीवित अरिहंत से भी ज्यादा महत्वशाली है साक्षात् अरिहंत तो कुछ काल तक धर्म देशना देते हैं किन्तु उनके अनेक कृत्रिम अकृत्रिम बिम्ब तो सदा ही वीतराग मार्ग का प्रकाशन करते हैं अतः जड़ होने पर भी मूर्ति की पवित्रता पूज्यता अक्षुण्ण रखना योग्य है।

जैसे—आर्यिका खड़े आहार भी करे तो वैसे इसमें उसका या किसी का कुछ बिगड़ने सुधरने वाला नहीं किन्तु वह कभी ऐसा नहीं कर सकती क्योंकि ऐसा करना शास्त्र और मर्यादा विरुद्ध है उसी तरह स्त्री द्वारा मूर्ति-स्पर्श में समझना चाहिये।

शास्त्रों में स्त्री पर्याय को निंद्य अपवित्र माना है, स्त्री के स्पर्श से मूर्त्ति अपवित्र सदोष होती है, मर्यादा का लोप होता है, आचार शास्त्र से विरोध आता है दूसरी तरफ मूर्त्ति-स्पर्श से स्त्री में कोई विशेषता पैदा नहीं होती तब व्यर्थ गलत प्रवृत्ति करने में क्या बुद्धिमानी ! मूर्त्ति घर की वस्तु नहीं है जो उसके साथ मनचाहा खिलवाड़ कर लिया जाये, वह तो मंदिरजी की महान् प्रतिष्ठित धर्म वस्तु है (पूज्य देव है) उसकी उपासना में विशेष विवेक की जरूरत है। धर्म स्थान में किया पाप वज्रलेप होता है, यह ध्यान में रखने की चीज है।

A. कुन्द कुन्दाम्नाय में स्त्री और शूद्र को मुक्ति (प्रव्रज्या) के योग्य नहीं माना इसीलिए इन्हें जिनाभिषेक से वंचित रखा है।

B. आर्यिका समाधि मरण के वक्त नग्न हो जाने पर भी मुक्ति तो दूर १६ वें स्वर्ग से ऊपर नव ग्रैवेयकादि को भी प्राप्त नहीं करती।

C. गर्भवती स्त्री ५ माह बाद पूजन और आहार दान भी नहीं कर सकती।

D. विधवा के हाथ से किसी भी मांगलिक कार्य का प्रारंभ नहीं होता (उसका अपशकुन माना जाता है)।

E. इसी तरह इस ट्रेक्ट के प्रारंभ में स्त्रियों को २१ बातों से वंचित बताया है जो सबको मान्य हैं। जब ये सब पापाश्रव के कारण नहीं हैं तो उन्हीं के आधार से निश्चित 'स्त्री प्रक्षाल निषेध' भी पापाश्रव का कारण नहीं है किन्तु आगम और युक्ति से सम्मत तथा वृद्ध परम्परागत होने से पुण्य रूप है।

स्त्री के लिए पूजन का तो विधान किया गया है सिर्फ अभिषेक का निषेध किया गया है जो मर्यादानुसार है। मर्यादानुसार प्रवृत्ति वैध है। मर्यादाविरुद्ध प्रवृत्ति करना अवश्य पापाश्रव का कारण है जिससे स्त्री-समाज को बचना चाहिये।

जिनाभिषेकं न विना विवेकं विनागमं नैव विवेक भानुः।
ततो विवेकाय सदागमानां रहस्यलाभे वनितोद्यता स्यात्॥

अर्थात्—जिनाभिषेक बिना विवेक के संभव नहीं और बिना आगम के विवेक संभव नहीं अतः विवेक के लिए स्त्री को सदा (समीचीन) आगमों का मर्मज्ञ बनने में तत्पर रहना चाहिये।

शास्त्र समुद्र अपार और अथाह है इस संदर्भ में मुझ से कहीं कोई भूल हो गई हो तो सुधीजन सुधार कर ग्रहण करें। इतिशम्। ★

परिशिष्ट :

पृष्ठ २३—यहाँ तक का अंश 'जैन-संदेश' साप्ताहिक के १७ मार्च, ८३ के अंक में भी छप चुका है।

पृष्ठ ४६—'श्री पाल चरित्र' में लिखा है कि—मैना सुन्दरी ने सिद्ध चक्र यंत्र मांडकर उसकी पूजा की थी उसी का जल वह लाई थी (वहां कोई मूर्त्ति नहीं थी)।

पृष्ठ ३०—जन्माभिषेक में तो देवियां तीर्थंकर-शिशु का शृंगार वस्त्राभूषण पहिनाना आदि करती हैं अगर इसे आधार बनाया जायेगा तो दि० प्रतिमा में भी इनका प्रसंग आयेगा अतः यह ठीक नहीं। अभिषेक पाठ में तो लिखा है—

इन्द्रोऽहं निजभूषणार्थं ममलं यज्ञोपवीतं दधे।
मुद्रा कंकण शेखराण्यपि तथा जन्माभिषेकोत्सवे॥

इसमें तो स्पष्टतः जन्माभिषेक में इन्द्र द्वारा ही अभिषेक बताया है इन्द्राणी द्वारा नहीं। इसीको प्रतिमाभिषेक में भी अपनाया है इससे भी स्त्री प्रक्षाल का स्पष्ट निषेध परिलक्षित होता है।

★ इस "स्त्री प्रक्षाल निषेध" ट्रेक्ट के स्त्री प्रक्षाल शब्द का अर्थ स्त्री का प्रक्षाल नहीं है किन्तु स्त्री द्वारा जिन प्रतिमा का प्रक्षाल है और निषेध का अर्थ उसकी अवैधता से है। जिस तरह "शासन देव पूजा" का अर्थ शासनदेवों की पूजा नहीं है किन्तु शासन देवों के द्वारा जिनेन्द्र की पूजा है अथवा 'मुनिदान' का अर्थ मुनि का दान नहीं है किन्तु मुनिके लिए दान है। सब जगह विषयानुसार ही सम्यक् अर्थ ग्रहण किया जाता है वही योग्य है किसी के पूंछने पर जैसे हम अपने को "दिगम्बर" कहते हैं तो वहाँ उसका तात्पर्य दि० धर्मी श्रावक से है दिगम्बर परमेष्ठी से नहीं।

पृष्ठ ४८—आजकल आर्यिकाओं की भी पूजाएं बन कर छप गई हैं यह सब सिद्धांत विपरीत है। पूजाओं में "अष्टकर्मदहनाय धूपं" आदि लिखा है जबकि—आर्यिकाओं का एक कर्म भी नष्ट नहीं हुआ है न उनमें ऐसी योग्यता है। किसी भी शास्त्र में उन्हें उत्तम पात्र नहीं बताया है अतः उन्हें अर्घ चढ़ाना या उनकी पूजा करना सब कुन्दकुन्दाम्नाय विरुद्ध है। जिनके कर्म नष्ट हो गये हैं या जिनमें ऐसी योग्यता है ऐसे पंच परमेष्ठी ही अर्घ चढ़ाने और पूजा किये जाने के

योग्य हैं, अन्य कोई नहीं। संयमी (षष्ठ गुणस्थानी) ही आगम में पूज्य माने गये हैं असंयमी नहीं। लिखा है—

असंजदं ण वंदे, गंथविहीणो वि सो ण वंदिज्जो ॥

असंयत चाहे वह परिग्रह रहित भी हो तो भी वंदनीय नहीं है। तब आर्यिका तो असंयत (पंचम गुणस्थानी) ही नहीं शाटिका रूप परिग्रह-युक्त भी है तब वह कैसे पूज्य (परमेष्ठी) हो सकती है ? अर्थात्—कभी नहीं। उसे पूज्य मानना तो श्वे० मान्यता है।

आर्यव्रती कुलभूषण जी महाराज, येरमाला (बेलगांव) ने करीब १० वर्ष पहिले "स्त्री प्रक्षाल निषेध-ऐलक आर्यिका से श्रेष्ठ है, ट्रेक्ट लिखा था उसमें बताया है कि—"ऐलक आर्यिका से पहिले आहार को निकलेगा, उसका आर्यिका से ऊंचा आसन रहेगा, गंधोदक पहिले ऐलक को देना होगा फिर आर्यिका को। आर्यिका ही पहिलें ऐलक को वंदन करेगी फिर ऐलक प्रतिवंदन करेगा। आर्यिका श्रावक का पाक्षिक प्रतिक्रमण करती है मुनि का पाक्षिक प्रतिक्रमण नहीं क्योंकि मुनि प्रतिक्रमण में "सग्रन्थं सचेलं व्युत्सृजामि, स्नानारंभं व्युत्सृजामि, अस्थिति भोजनं व्युत्सृजामि" पाठ हैं जो आर्यिका में सम्भव नहीं। अगर कोरा उच्चारण किया जायेगा तो वह नाटक मात्र होगा, असत्य का दोष भी लगेगा। आर्यिका के आहार पर कभी पंचाश्चर्य होने का कथन किसी शास्त्र में नहीं पाया जाता।" स्व. क्षु. सिद्धसागरजी भी यही मानते थे इसी से वे श्री वीरसागरजी के संघ से अलग होगए थे।

स्त्री के कांख, स्तन, योनि आदि में सतत सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति होने से उसकी पर्याय अशुचि और संयम के अयोग्य है अतः वह मूर्ति-स्पर्श नहीं कर सकती। ऐसी अयोग्यता स्वभावतः ऐलक में नहीं होने से उसे आर्यिका से श्रेष्ठ माना जा सकता है। जैसे अभव्य मुनि से भव्य प्राणी स्वभावतः श्रेष्ठ होता है। समवशरण की १२ सभाओं में मुनियों (संयमियों) की सभा से मनुष्यों की सभा जुदी है किन्तु आर्यिका की सभा से अन्य स्त्रियों की सभा जुदी नहीं है सब स्त्रियां उसही में शामिल हैं इससे भी आर्यिका का दर्जा साधारण सिद्ध होता है।

कोई भी स्त्री किसी भी तीर्थंकर की प्रथम आहार-दाता नहीं होती, यह सौभाग्य भी पुरुषों को ही प्राप्त होता है। —लेखक

१६.	श्रीमान् ब्र. पं. गौरीलालजी जैन	इन्दौर
१७.	श्री. मांगीलालजी भीकासा बड़वाहा	,,
१८.	श्री. पं. कैलाशचन्द्रजी जैन सिद्धांत शास्त्री (सम्पादक-जैन संदेश)	बनारस
१९.	श्री. पं. पन्नालालजी जैन धर्मालंकार, धर्माध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय	,,
२०.	श्री. भट्टारक चारुकीर्ति पंडिताचार्य वर्य स्वामीजी,	श्रवण बेलगुल
२१.	श्री. भट्टारक अभिनव कीर्ति महाराज–श्री जैन मठ,	,, ,,
२२.	श्री. पं. शांतिराजजी शास्त्री काव्यतीर्थ,	,, ,,
२३.	श्री. भट्टारक मठाधीश पार्श्वकीर्तिजी महाराज दि. जैन मठ,	मूडबिद्री
२४.	श्री. पं. नागराजजी शास्त्री न्यायतीर्थ	,,
२५.	श्री. पू. स्वस्ति श्री आर्यव्रती कुल भूषणजी महाराज,	येरमाला (बेलगांव)
२६.	श्री. अण्णा साहिब पाटिल,	,, ,,
२७.	श्री. छोटेलालजी जैन,	अदावन
२८.	श्री. रावत ऋषभलालजी जैन विशारद,	राघोगढ़
२९.	श्री. कन्हैयालालजी अनूपचन्द्रजी सरावगी,	नागौर
३०.	श्री. ब्र. छोटेलालजी जैन,	भोपाल
३१.	श्री. पं. मक्खनलालजी जैन,	दिल्ली
३२.	श्री. पं दिगम्बरदासजी जैन मुख्तार,	सहारनपुर
३३.	श्री. पं. जुगमंदिरदासजी जैन M.D.H.,	जोबनेर
३४.	श्री. पं. मनीरामजी जैन,	ऐत्मादपुर
*३५.	श्री. ब्र. हीरालालजी खुशालचंदजी दोशी,	फलटण
*३६.	श्री. १०८ पू. मुनिराज विजयसागरजी महाराज सा.	

—साभार संकलित